धर्म ॐ अर्थ

वेद-रश्मि

लेखक छीतरमल आर्य
हरसौली (अलवर)

मूल्य दस रुपये

काम मोक्ष

विषय-सूची

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	ईश वन्दना	3
2.	ब्रह्म यज्ञ	4
3.	प्यारे प्रभु से मिलाप	10
4.	जीवन ज्योति	16
5.	वेदों में ईश्वर भक्ति	17
6.	ईश्वर की उपासना	18
7.	धर्म शिक्षा	21
8.	ब्रह्मचर्य-क्या-क्यों-कैसे	25
9.	प्रेरणा श्रोत	31
10.	भजन	32
11.	आत्मिक विकास के साधन	47
12.	ईश्वरीय न्याय के अनूठे तरीके	48
13.	ईश्वर भक्ति से लाभ	63
14.	सच्चा सुख	65
15.	आनन्द की लहरें	71
16.	मोक्ष साधक गायत्री	74
17.	मोक्ष और उसकी प्राप्ति के साधन	87
18.	ईश्वर सहायक है	95

॥ ॐ ॥

भूमिका

प्रिय पाठक वृन्द ।

उस सत् चित् आनन्द परमात्मा का बार-बार धन्यवाद है जिसने इस सुन्दर और विचित्र संसार की रचना करके प्राणियों को संसार के मनोहर आनन्ददायक दृश्य देखने का अवसर प्रदान किया । भगवान का इसलिए भी धन्यवाद है कि उसने सृष्टि रचना के साथ-साथ वेद और शास्त्रों का प्रबन्ध भी किया ताकि लोग ज्ञान प्राप्त करके उचित और शुभ मार्ग पर चल कर अपना जीवन सुख-शांति से व्यतीत करते रहें ।

संसार की असंख्य योनियों में मानव योनि ही एक ऐसी हैं जिसमें मानव अपने जीवन को संयमित नियमित करके सुखी एवं सम्पन्न बना सकता है और जीवमात्र के परम लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम की पूर्ति कर मोक्ष को प्राप्त हो सकता है । दु:ख किसी को प्यारा नहीं होता । प्रत्येक प्राणी दु:ख से छूटना चाहता है किन्तु उसके उपाय कर सकने में केवल जागरुक मानव ही हो सकता है ।

बन्धुओं !

यह जीव ईश्वर और प्रकृति के बीच में खडा है । प्रकृति, जो अत्यन्त चमक-दमक, आकर्षण और मनोरंजन से भरपूर है । इस जीवन को अपनी ओर स्वभावत: ही आकृष्ट कर लेती है । यदि मानव प्रतिफल सचेत एवं जागरुक न रहे—तो सारा जीवन इस प्रकृति की चका-चौंध में बिताने को विवश हो जाता है । प्रकृति के पुजारी मानव को तो बार-बार प्राकृतिक (भौतिक) तत्त्वों से बने शरीर में ही आना-जाना पड़ेगा । इसी का नाम बन्धन है, दु:ख है ।

दु:खों से मुक्ति का एक मात्र उपाय आनन्दस्वरूप, सुख-सागर भगवान की भक्ति ही है अर्थात् प्रभू की आज्ञा पालन और अपने आपको,

सर्वस्व को उसकी शरण में समर्पित कर देना है। प्रस्तुत पुस्तक में ईश्वर का स्वरूप, उसकी उपासना, वेदों में ईश्वर भक्ति के सम्बन्ध में स्पष्ट प्रकाश डाला गया है। सन्ध्या क्यों और कैसे करें, धर्म क्या है तथा वेदों के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर द्वारा प्रकाश डाला गया है। ब्रह्मचर्य क्या, क्यों और कैसे में, ब्रह्मचर्य का महत्त्व और इसका कैसे पालन कर सकते हैं, इस पर विस्तार से लिखा गया है। इसी प्रकार ईश्वरीय न्याय के अनु उदाहरणों का कहानियों द्वारा वर्णन किया गया है। ईश्वर भक्ति के गीत और भजनों का संग्रह भी इसमें अनूठा है। ईश्वर के प्रति पूर्ण श्रद्धा विश्वास और प्रेम द्वारा, मल, विशेष और आराम से अन्तःकरम को पवित्र कर, सर्वाधिकार, आनन्दश्रोत प्रभू की कृपा का पात्र बनाना ही इस पुस्तक का उद्देश्य है। अन्त में त्वदीय वस्तु गोविन्द, तुभ्यं एव समर्पय। तेरी वस्तु तुझ को समर्पित।

विनीत—
छीतरमल आर्य
सेवानिवृत उप जिला शिक्षाधिकारी
हरसोली (अलवर)

पुस्तक प्राप्ति स्थान—
आदर्श विद्यामन्दिर,
हरसोली (अलवर)

मूल्य – दस रुपये।

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत् नश्चरित मात्मनः।
किन्तु में पशुभिस्तुल्यं किन्तु सत्पुरूषैरिति:।

भावार्थ—मनुष्य को चाहिए, वह प्रत्येक दिन आत्मनिरीक्षण करके पता लगावें कि मेरा जीवन पशुओं के समान केवल खाने पीने में ही व्यतीत हो रहा है, या सत्पुरूषों के समान उत्तम-उत्तम कार्यों में लग रहा है।

॥ ॐ ॥

ईश वन्दना

(1) इन्द्र क्रतुं न आभर, पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षाणो अस्मिन पुरूहूत, यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि। ऋग्वेद

हे ऐश्वर्य सम्पन्न परमात्मन्! पुत्रों के लिये पिता की भांति, हमारे लिये प्रज्ञान दे दे–सौंप दे। हे वहुत प्रकारसे आमन्त्रित करने—बुलाने योग्य देव! इस संसार मात्रा में हमें शिक्षा दें। हम तेरी ज्योति को प्राप्त कर सकें। और उसे देखते-देखते उसकेसहारे अन्त में तुझ तक पहुंच जावें।

(2) हे विभो! आनन्द सिन्धो! मे च मेघा दीयताम्।
यच्च दुरितं दीनबन्धों! तच्च दूरं नीयताम् ॥1॥

अर्थ—हे सर्व व्यापक आनन्द के सागर प्रभुदेव! मुझे उत्तम बुद्धि प्रदान कीजिये। हे दीनबन्धु! युझमें जो बुरे गुण कर्म स्वभाव हैं, उन्हें कृपा कर दूर कीजिये।

(3) चंचलानि चोन्द्रियाणि मानसं मे पूयताम्।
शरणं याचे तावको ऽहं सेवकों ऽनुगृह्यताम् ॥

अर्थ—हे दयालु सेरी इन्द्रियां और मेंरामन अत्यन्त चंचल तथा अपवित्र हैं, इनको पवित्र तथा स्थिर कीजिए। मैं आपकी शरण आया हूँ, आप दया कर मुझ सेवक को अपने आश्रय में रख लीजिए।

(4) त्वयिच विद्यते यत् तत्च मयि निधीयताम्।
या च दुर्गुणदीनता मयि, सा तु शीघ्र क्षीयताम् ॥

अर्थ—हे सर्वशक्तिमान परमेश्वर! आप में जो शक्तियां हैं, वे मुझ में धारण कराइये तथा जो मेरे मम में दुर्गुण दीनता, निर्बलता है, उसे शीघ्र दूर कीजिए।

(5) शौर्यं धैर्यं तैजसंच भारते देशीयतम् ।

हे दयामय अथिअनादें ! प्रार्थना मम स्रूयताम् ।।

अर्थ--हे दयानिधान ! हमारे भारत देश के सभी निवासियों को शेरवीर, तेजस्वी और धैर्यशाली बनाइये । हे अनादे ! मेरी यह प्रार्थना सुनिये और मेरी कामना को शीघ्र ही पूरा कीजिए ।

(6) प्रभो ! मयि धेहि विज्ञानं तरेयं दु:ख सागरात् ।
त्वदीया प्रेम्णा भक्ति, धरेयं शाश्वतं धात: ।।

हे प्रभो ! आप मुझसे विशिष्ट ज्ञान धारण कीजिए, जिससे मैं दुःख रूपी संसार सागर को तर सकूँ । हे संसार के धारक और पोषक प्रभो ! मैं प्रेम-पूर्वक तुम्हारी भक्ति को सदा धारण करता रहूँ ।

ब्रह्मयज्ञ अर्थात् संध्या

परमात्मा की सृष्टि में मानव सर्वोत्तम प्राणी है । मानव को सर्वोत्तम इसलिए कहा गया है कि अन्य प्राणियों की तुलना में उसे बुद्धि है । यदि वह अपनी बुद्धि का सदुपयोग करे तो उसका जीवन सुखी सकता है । बुद्धि को सद्‌बुद्धि बनाने के लिए पंच महायज्ञ करने चाहिए । ये पंच महायज्ञ हैं -- (1)ब्रह्मयज्ञ (संध्या) (2) देवयज्ञ (हवन) (3) पितृयज्ञ (जीवित माता-पिता और गुरुजनों की सेवा) (4) अतिथि यज्ञ (घर पर किसी भी समय आये विद्वानों और देशभक्तों की सेवा) (5) भूतयज्ञ (प्राणीमात्र के प्रति सद्‌भावना और यथाशक्ति उनकी सेवा करना ।

संध्या शब्द का अर्थ:—सन्ध्या शब्द का अर्थ "सन्ध्यायन्ति सन्ध्यायते वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या" अर्थात् भली प्रकार ध्यान करते हैं या किया जाये परमेश्वर का जिसमें, वह सन्ध्या है । सन्ध्या क्यों करनी चाहिए—जैसे शरीर के लिए भोजन आवश्यक है वैसे ही अन्त:करण की शुद्धि, आत्मिक बल तथा ईश्वर ज्ञान के लिए सन्ध्या करना आवश्यक है । चित्त की स्थिरता, मन की विषय उपरामता, आत्मोन्नति, अहंकार का नाश, बुद्धि की सूक्ष्मता तथा तीव्रता के लिए, सन्ध्या रूपी ज्ञान गंगा में अवश्य स्नान करना चाहिए ।

समय और स्नान—प्रातःकाल पूर्व की ओर मुख करके और सायंकाल पश्चिम की ओर मुख करके एकांत व शुद्ध स्नान में सन्ध्या करनी

हिए । पहिले गायत्री मन्त्र का पाठ करके शिखा बन्धन करना चाहिए । सका यह अभिप्राय है कि बिखरे हुए बाल सन्ध्या के समय बाधक न हों और मस्तिष्क की बिखरी हुई शक्ति भी एकत्र हो ।

आचमन मन्त्र — ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय, आपो भवन्तु पीतये । योरभि स्रवन्तु नः ॥१॥

अर्थ—सर्वव्यापक और सर्वप्रकाशक परमेश्वर, मन माँगे पदार्थ, सुख शान्ति और पूर्ण आनन्द तथा मुक्ति की प्राप्ति के लिए हम सब पर कल्याणकारी होवें और चारों ओर से सुख की वृष्टि करे । तीन बार जल से आचमन करें ।

इन्द्रिय स्पर्श:— ॐ वाक् वाक् । ओं प्राण: प्राण: । ओं चक्षु चक्षु: । ओं श्रोत्रं श्रोत्रम् । ओं नाभि: । ओं कण्ठः । ओं शिर: । ओं बाहुभ्यां यशो बलम् । ओं करतल करपृष्ठे ।

अर्थ—परमेश्वर की अपार दया से मेरे मुख में रसना तथा बोलने की शक्ति, नासिका द्वारा व उनमें प्राण तथा सूँघने की शक्ति, आँखें तथा देखने की शक्ति, कान तथा सुनने की शक्ति मरण पर्यन्त विद्यमान रहे । नाभिचक्र ठीक काम करे । हृदय समुद्र की भाँति गम्भीर तथा विशाल हो। गले से मधुर स्वर निकले, शिर ठण्डा रहे । भुजाएँ सदा यश और बल कमाने वाले काम करें । हाथ स्वस्थ रहें । प्रभो ! जान बूझकर दशों इन्द्रियों से कभी पाप न करूँ ।

उपरोक्त मन्त्र के द्वारा बायें हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से स्पर्श, पहिले दक्षिण और पश्चात् बाये अंगों को, करे ।

मार्जन मन्त्र ओं भू: पुनातु शिरसि । ओं भुव: पुनातु नेत्रयो: ।
ओं स्व: पुनातु कण्ठे । ओं मह: पुनातु हृदये ।
ओं जन: पुनातु नाभ्याम् । ओं तप: पुनातु पादयों ।
ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि । ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र: ।

प्राणप्रिय परमेश्वर ! मेरे सिर को हे दुःख दूर कर्त्ता ! आँखों को हे सुखदाता ! मेरे गले को हे, सबसे महान प्रभु ! हृदय को सबके पिता !

नाभिचक्र को दुष्टों को सन्तापकारी ! पैरों को, एक रस प्रभु ! सिर
और आकाशवत् सर्वव्यापठ पिता। सब अंगों को पवित्र तथा पुष्ट क
इस मार्जन मन्त्रों से क्रमशः शिर पर, दोनों नेत्रों पर, कण्ठ पर हृदय
नाभि पर, दोनों पैरों पर, मस्तक पर तथा अंगों पर मार्जन करें।

प्राणायाम मन्त्र–ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओ महः। ओं ज
ओं तप.। ओं सत्यम्। अर्थ–हे सर्वरक्षक प्रभो। आप प्राणस्वरूप,
नाशक, सुख स्वरूप, सबसे बड़े, सबके पिता, दुष्टों को दण्ड देने व
अन्तर्यामि तथा सत्य स्वरूप हैं।

अघमर्षण मन्त्र --

(1) ओं ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्य जायत।
ततो, राज्य जायत, ततः समुद्रो अर्णवः ॥ 1 ॥

है मनुष्यों : परमेश्वर के ज्ञानमय अनन्त सामर्थ्य से वेद विद्या
कार्यरूप प्रकृति=सृष्टि उत्पन्न हुई। उसी के सामर्थ्य से महा प्रलय
उसी के सामर्थ्य से जल के समुद्र उत्पन्न हुए।

(2) ओं समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहो रात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतोवशी ॥ 2 ॥

जगत् को वश में रखने वाले परमेश्वर ने, अपने सहज स्वभाव
जल कोष के पीछे काल के विभाग-वर्ष, दिन और रात्रि रचे ॥

(3) ओं सूर्या चन्द्रमसो धाता, यथा पूर्वं मकल्पयत्।
दिवंच पृथिवी चान्तरिक्ष मथो स्वः ॥ 3 ॥

अर्थ– हे सारे जगत को धारण तथा पालन-पोषण करने वाले
मेश्वर ! जैसे पहले कल्प की सृष्टि में रचना की थी, ठीक उसी प्र
अब इस कल्प में भी सूर्य और चन्द्र को, अग्नि रूपी अपने सर्वोतम प्र
को, पृथ्वी को, आकाश को और भूमि तथा द्यूलोक के बीच के लो
लोकान्तरों को रचा ॥ 3 ॥

पुनः 'शन्नो देवीराभिष्टय" मन्त्र से तीन आचमन करे।

मनसा परिक्रमा मन्त्रा :

(1) ओं प्राची दिगग्नि रधिपति रसितो रक्षितादित्या इषवः।

तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।

योऽस्मान् द्वेष्टि यंवयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्म :।। 1 ।।

अर्थ—हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर ! पूर्व दिशा अथवा सामने की ओर का स्वामी है । वह सर्व प्रकार के बन्धनों से रहित है, वही हमारी रक्षा करने वाला है । सूर्य की किरणें उसकी रक्षा के साधन हैं । इन सब शक्तियों, अर्थात् रक्षा करने वाले तथा तीर–रूप रक्षा के साधनों को बार-बार नमस्कार हो । जो जन अज्ञान वश हमसे वैर करता है और जिससे हम वैर करते हैं, उनको आपके न्याय रूपी जबड़े में रखते हैं ।। 1 ।।

(2) ओं दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितरइषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वय द्विष्मस्त वो जम्भे दध्मः ।। 2 ।।

हे परमेश्वर ! आप हमारे दक्षिण की ओर व्यापक हैं । आप हमारे राजाधिराज हैं और भुजंगादि बिना हड्डी वाले जन्तुओं से हमारी रक्षा करते हैं और ज्ञानियों के द्वारा हमें ज्ञान प्रदान करते हैं । आपके आधिप-................(आगे पहिले मंत्र के अर्थ के समान)

(3) ओं प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः प्रदाकू रक्षिताऽन्नमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्य नमः इषुभ्यो नमः एभ्यो अस्तु । योस्मान् द्वेष्टि यं वयं दिष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।। 3 ।।

हे सौन्दर्य–सागर ! आप हमारी पिछली ओर भी विद्यमान हैं । आप ही हमारे राजाधिराज है । भयंकर शब्द करने वाले तथा विषधारी प्राणियों से रक्षा करने वाले हैं । सर्व प्रकार के अन्न उत्पन्न करके हमारी पालना करते हैं उन सब...... (आगे पहिले मंत्र के समान)

(4) ओं उदीची दिक् सोमोऽधिपति स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं दिष्मस्त वो जम्भे दध्मः ।। 4 ।।

हे सोम्य स्वभाव परमात्मन् ! आप हमारी बांयी ओर भी व्यापक हैं । आप हमारे परम स्वामी हैं । आपके माता-पिता आदि जन्म दाता

कोइ नहीं। आप स्वयम्भ् और हमारे रक्षक हैं। आप ही विद्युत् द्वारा हमारे शरीर में रूधिर संचालन करके हमें जीवित रखते हैं ।। 4 ।।

(5) ओं ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपति: कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषव:। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इपुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्त वो जम्भे दध्म: ।। 5 ।।

हे सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ! जो हमारे नीचे की ओर हैं, उनमें भी आप व्याप्त हैं। इधर भी आप ही हमारे स्वामी हैं, जिनके हरित रंग वाले वृक्ष आदि ग्रीया के समान हैं। लता, वृक्ष आदि हमारी रक्षा के लिए वाण रूप साधन हैं। उन सब–(पहिले मंत्र के समान)

(6) ओं ऊर्ध्वा दिग् वृहस्पतिरधिपति: श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषव:। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इपुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्त वो जम्भे दध्म:।

हे महान प्रभो ! आप ऊपर के लोकों में व्यापक, हमारे स्वामी और रक्षक हैं। आप वर्षा करके हमारी कृषि को सींचते हैं, जिससे हमारा जींवन होता है। आपके आधिपत्य, रक्षा और जीवन प्रदान के लिए प्रभो! आपको बारम्बार नमस्कार है। जो अज्ञानवश हमसे द्वेष करते हैं, उसे आपके न्यायरूपी सामर्थ्य पर छोड़ते हैं।

उपस्थान मंत्र —

(1) ओं उद्वयं तमसस्परि स्व: पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरूत्तमम् ।। 1 ।।

हे प्रभो ! आप अज्ञान अन्धकार से परे, सुखस्वरूप प्रलय के पश्चात् रहने वाले, दिव्य गुणों के साथ सर्वत्र विद्यमान् देव और हमको जन्म देने वाले हैं, हम आपके उत्तम ज्योति स्वरूप को प्राप्त हों।

(2) ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतव:। दृशे विश्वाय सूर्यम्।

हे जगदीश्वर ! आप सकल ऐश्वर्यों के उत्पादक, सर्वज्ञ, जीवात्मा के प्रकाशक हैं। आपकी महिमा सबको दिखाने के लिए, संसार के पदार्थ पताका का काम करते हैं। जिस प्रकार झण्डियाँ मार्ग दिखलाती हैं, उसी प्रकार सृष्टि नियम सबको परमेश्वर की प्रतीति कराते हैं।

(3) ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्यवरूणस्याग्नेः। आप्रा-द्यावा पृथिवी अन्तरिक्ष सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ।। 3 ।।

हे स्वामिन ! यद्यपि इस संसार के पदार्थ आपको दर्शाते हैं परन्तु आप अद्भुत और विचित्र हैं, आप दिव्य पदार्थों के बल हैं । सूर्य चन्द्रमा और अग्नि के चक्षु अथवा प्रकाशक हैं । भूमि, आकाश और तदन्तर्गत लोक सब आपके सामर्थ्य में हैं । आप चर-अचर जगत् के उत्पादक और अन्तर्यामी हैं । हे प्रभो ! हम सब ऐसे बलवान् हों कि सदैव मन, वाणी और कर्म से सत्य को ग्रहण करें ।

(4) ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं, शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।। 4 ।।

हे सब के मार्ग दर्शक ! आप अनादि कालसे विद्वानों और संसार के हितार्थ शुद्ध वर्तमान हैं । प्रभो ! हम आपका ज्ञान सौ वर्ष सुनें, आपके नाम का सौ वर्ष व्याख्यान करें, सौ वर्ष की आयु भर पराधीन न हों और यदि योगाभ्यास से सौ वर्ष से भी अधिक आयु हो तो इसी प्रकार विचरें ।

गायत्री मंत्र— ओइम् भू भुर्वः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

अर्थ— हे रक्षक ! प्राणाधार, दुःख दूर करने वाले, आनन्द के दाता परमेश्वर ! हम आपके जगत् उत्पादक सबसे श्रेष्ठ, शुद्ध स्वरूप, दिव्य गुणों का ध्यान करते हैं, आप हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करें ।

तू ने हमें उत्पन्न किया, पालन भी कर रहा है तू ।
तुझसे ही पाते प्राण हम, दुखियों के कष्ट हरता तू ।।
तेरा महान तेज है, छाया हुआ सभी स्थान ।
सृष्टि की वस्तु-वस्तु में, हो रहा है विद्यमान ।।
तेरा ही धरते ध्यान हम मांगते तेरी दया ।
ईश्वर हमारी बुद्धि को, श्रेष्ट मार्ग पर चला ।।

अथ समर्पणम्— हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादि कर्मणा धर्मार्थकाम मोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेत ।।

हे परमेश्वर दयानिधे ! आपकी कृपा से जयोपासनादि कर्मों को करके हम धर्म, अर्थ, काम और मोदन की सिद्धि को शीघ्र प्राप्त होवें ।

नमस्कार मन्त्र—ओं नमः शम्भवाय च मयो भवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च । अर्थ—हे प्रभो ! आप सुखस्वरूप हैं, सर्वोत्तम सुखों को देने वाले हैं, आपको नमस्कार हो । आप कल्याणकर्त्ता, मोक्षस्वरूप हैं, आप ही अपने भक्तों को सुख और शान्ति देने वाले हैं और उनको धर्म कार्यों में लगाने वाले हैं, आपको नमस्कार हो । आप अत्यन्त मंगल स्वरूप हैं और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति कराने वाले हैं । आपको हमारा अत्यन्त नम्रता, परम श्रद्धा और भक्ति से बार-बार नमस्कार हो ।

हे मान्यवर महेश्वर ! मंगल करों हमारा ।
पावन प्रकाश पाये, परमार्थ पुण्य द्वारा ॥
हे शान्तिरूप स्वामी ! मन शान्त हो हमारा ।
बहती रहे हृदय में, अविरल सुज्ञान धारा ॥
फिर अन्त में पिताजी ! तुझको नमन करे हम ।
वेदों के ज्ञान द्वारा, जीवन सफल करें हम ॥

॥इत्योम् शम्

प्यारे प्रभु से मिलाप

प्रातः और सायं सन्ध्या व हवन के पश्चात् प्रत्येक नर-नारी को भक्ति-भाजक परमेश्वर से मिलाप करना चाहिए । उस समय उदार हृदय से उस महाप्रभु से प्रार्थना करें, जो आपके रोम रोम में रम रहा है । जैसे पुत्र पिता से अपने मन की प्रत्येक कामना प्रकट कर देता है वैसे भी उस पिता को साक्षात करके, उससे अपनी प्रत्येक शुभ इच्छा प्रकट करो, जो कुछ मांगना है, उससे मांगो । वह आपकी प्रत्येक शुभ इच्छा पूरी करेगा । सच्ची श्रद्धा और विश्वासयुक्त, प्रार्थना से हृदय में शक्ति की धारा और आत्मा में आनन्द की वृष्टि होगी और थोड़े काल के अभ्यास से ही आपको अनुभव होगा कि आपके जीवन में प्रतिदिन कितना परिवर्तन हो रहा है । अपने पुरुषार्थ के बाद ही परमदेव परमात्मा से सहायता की

इच्छा करना "प्रार्थना" है। वास्तव में प्रार्थना वेद मंत्रों द्वारा ही करनी चाहिए। अपने शब्दों द्वारा की हुई प्रार्थना में उतना बल कदापि नहीं आ सकता। यहाँ कुछ मंत्र व श्लोक देकर उनके भावार्थ से पूर्ण प्रार्थनाएँ दी जाती हैं।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो व भूविथ। अथा ते सुम्नमी महे। 8191111 हे भगवन। आप हमारे परम पिता है और माता है, सदा सुख के देने वाले हैं। दुष्टों के अत्याचार से बचाकर हमको स्थिर करने वाला सुख प्रदान कीजिए। हमको उत्तम बुद्धि और पराक्रम प्रदान कीजिए।

(2) स नः पितेव सूनवेऽग्ने सुपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ऋ 1।1।91 अर्थ—हे अग्ने। हमारी उन्नति के साधक प्रभो! आप हमें पिता की तरह सुगमता से समीप प्राप्त होने वाले होइये। पुत्र को पिता से भय नहीं लगता वहाँ वह प्रेम का अनुभव करता है और निशंक होकर पिता की गोद में पहुँचने की चेष्टा करता है। इसी प्रकार हम भी आपकी गोद में आ सके। पिता पुत्र के लिए उत्तमोत्तम उपहार प्राप्त कराता है। प्रभु भी हमारे लिए जीवन में उन्नति के साधन भूत वस्तुओं को प्राप्त को प्राप्त कराते हैं। हमें भी चाहिए कि हम उन वस्तुओं का ठीक प्रयोग करते हुए, उन्नति के पथ पर आगे बढ़े। हे प्रभु! हमें सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कराके, कल्याण के लिए उत्तम स्थिति के लिए संगत कीजिये। आपसे दूर होते ही हम मार्ग भ्रष्ट हो जाते हैं। आपका स्मरण हमारी जीवन गाड़ी को पथ भ्रष्ट नहीं होने देता। जैसे पिता की दृष्टि में रहने वाले बालक का आचरण ठीक बना रहता है, उसी प्रकार प्रभु के सामीप्य में हमारा जीवन उत्तम मार्ग पर स्थिर रहता है।

(3) उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषा वस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि। ऋ. '-1-7 (अग्ने)।

• हे ज्ञान प्रकाश स्वरूप परमात्मन्! (वयम्) हम (दिवे दिवे) प्रतिदिन निरन्तर (दोषावस्तः) सायं प्रात (धिया) धारणा-ध्यान समाधि से (नमः भरन्त) नमस्कार, गुणकीर्तन तथा हमारे आत्मा का समर्पण करते

हुए—अन्यत्र से हटाकर तुझ में रखते हुए—(त्वा) तुझको (उप-आ-एमसि) प्राप्त हों । प्रभु परमात्मा के प्रति आत्म समर्पण करने और उसकी समीपता पाने के लिए प्रातः और सायं ही सुन्दर वेला है । परमात्मा के ध्यान से गुण चिन्तन और अनुराग रूप वैराग्य बनता है । और नमस्कार से सारी प्रवृति अन्यत्र से हटाकर परमात्मा में लगाई जाती है । अग्नि में जैसे लोहे को पडकर अपनी कालिमा और कठोरता छोड़ देनी होती हैं, तभी वह अग्नि के समान प्रकाशमान और तापमान बन जाता है । इसी प्रकार मानव को अपनी कालिमा-व्यसन वासना छोड़नी होनी- ध्यान से और परमात्मा मे नम्र भाव से समर्पण करने से कठोरता-कृतघ्नता और नास्तिकता छोडनी होगी । हे प्रभु ! आज से प्रतिदिन हम स्वार्थ त्याग द्वारा पवित्र अन्तकरयः होते हुए, प्रातः सायं तुम्हारी वन्दना करते हुए, तुम्हारे समीप आ जावे ।

(4) अग्नि मीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारम् रत्न-घातमम् । (ऋ 1।1।1)

मैं (अग्नि) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को गति देने वाले, सब जीवों की उन्नति के साधक-अग्रणी प्रभु को, (ईले) उपासना करता हूँ जो- प्रभु (पुरोहितं) सृष्टि से पूर्व ही विद्यमान हैं जो बने कभी नहीं "स्वयम्भू" है, अपने आप होने वाले हैं । "यज्ञस्य देवं" वे प्रभु देववाणी द्वारा सब यज्ञों का श्रेष्ठ कर्मों का प्रकाश करने वाले हैं । ये प्रभु ही (ऋत्विजम्) समय समय पर प्रत्येक ऋतु में पूजा के योग्य हैं । हम स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए ज्ञानपूर्वक कर्मों को करें । फिर जीविकोंपार्जन के कर्मों में प्रवृत्त हों । बाकी समय स्वाध्याम में लगावें । स्वाध्याव से थकने पर प्रभु के नाम का जप करें । रात्रि में प्रभु के नाम का जप करते हुए निद्रा की गोद में जाये । इससे सारी रात प्रभु से सम्पर्क बना रहेगा और स्वप्न में प्रभु का आभास मिलेगा । इसे हम जागरित होने पर भी न भूलने का प्रयत्न करें । यही बात योग दर्शन में "स्वप्रज्ञानालम्वनं वा" इस सूत्र में कहीं गइ है । (होतारं) वे प्रभु सब कुछ देने वाले हैं, (रत्न घातमम्) रमणीय धनों के प्राप्त कराने वालों में वे प्रभु सर्वोत्तम हैं ।

(5) तद्विष्णोः परमः पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् (ऋ. 1।22।20।।)

(सूरय) ध्यानि, ज्ञानी, स्तोता जन (विष्णोः) व्यापक परमात्मा के (तत्पर पदं) उस अभिष्ठ उत्कृष्ट स्वरूप को (दिवि-इव चक्षु आततम्) आकाश में स्पष्ट प्रकाशित सूर्य की भाँति (सदा पश्यन्ति) अपने आत्मा में सदा देखते हैं। व्यापक परमात्मा आँख से नहीं दीखा करता है। वह आँख का विषय नहीं हैं क्योंकि वह एक देशी नहीं जो आँख से दिखाई दे। उसको यानि बाहरी आँख बन्द करके ज्ञान नेत्र से हृदयाकाश में देखता है। जैसे सूर्य को आकाश में। देखने वाला उसे देखकर कह उठता है "त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावदिष्यामि" तू ही प्रत्यक्ष ब्रह्म है, तुझे ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा।

(6) अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णा विदज्जरितारम्। मृडा सुक्षत्र मृडय। (ऋ. 7।89 40)। अपां मध्ये तस्थिवांसं जरितारं तृष्णा-अविदत्)

तुझ जल महान व्यापक परमात्मा में वर्तमान मुझ जीर्णता को प्राप्त हुए—असंयमी को—तृष्णा-प्यास बनी हुई हैं—तुझ जैसे सर्वत्र—प्रवाहित, आनन्द श्रोत में रहता हुआ भी, मैं प्यासा हूँ। हे परमात्मा! इसमें कारण मेरी जीर्णता, इन्द्रिय-क्षीणता-असंयमिता है, जिससे मैं अमृत रस का पान न कर सकूँ। अतः (सुक्षत्र मृडामृडय) हे उत्तम त्राता परमात्मा! मुझे सुखी कर। प्रभो! ऐसी कृपा करो कि मैं संयमी बनकर, तेरे अमृत रस का पान कर सकूँ।

परमात्मा सर्वत्र व्यापक है, उसका आनन्द श्रोत भी सर्वत्र बह रहा है, परन्तु संयमी भाग्यवान जन ही उसका पान कर सकता है, असंयमी नहीं। असंयमी तो सांसारिक विषय प्रवाहों में बहता हुआ, अपनी समस्त आत्मशक्ति का ह्रास कर अन्त में डूब ही जाता है।

(7) सख्ये ते इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।
त्वामभि प्रणो नु मो जेतारमपराजितम् ऋ. ।।1।11।2 ।।

(शवसस्पते-इन्द्र) हे विविध बलों के स्वामी परमऐश्वर्यवान् परमात्मा! (ते (सख्ये) तेरी मित्रता में (वाजिनः) बलवान हुए हम (मा भेम)

न डरें। (त्वां अपराजितं जेतारम्) तुम अपराजित जेता को (अभि प्रणोणमः) निरन्तर उत्तम रीति से स्तुति करते हैं। हे प्रभु ! तू पूर्ण ऐश्वर्यवान् है, तुझ जैसे अपराजित बलवान की मित्रता में भय किसका ? तुझे हम निरन्तर नमस्कार करते हैं। तेरी शरण में रहते हुए, कोई भी भय हमें नहीं गिरा सकता। अतः हम तेरी मित्रता में मग्न हो, भय रहित हो जावें इस अभय प्रसाद को पाते हुए, हम तुझे बार-बार प्रणाम करते हैं, तेरी स्तुति करते हैं।

(8) इन्द्र क्रतुं न आभर, पिता पुत्रेभ्यों यथा ।
शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत, यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्य सम्पन्न परमात्मा ! (पुत्रभ्यो यथा पिता) पुत्रों के लिए पिता की भाँति (नः क्रतुं आभर) हमारे लिए प्रज्ञान दे दें-सोंप दें। (पुरुहूत) हे वहुत प्रकार से आमन्त्रित करने-बुलाने योग्य देव ! अस्मिन् यामनि) इस संसार यात्रा मे (नः शिक्षा) हमें शिक्षा दें (जीवन ज्योति अशीमहि) हम जीव तेरी ज्योति को प्राप्त कर सकें।

हे परमात्मा ! तू हमारा पिता है, हम तेरे पुत्र हैं पुत्रों के अन्दर जैसे पिता ज्ञान भरा करता है, ऐसे ही आप भी हमारे अन्दर ज्ञान भरदे-जीवन यात्रा के मार्ग निर्देश कर दें। तथा इस संसार यात्रा में शिक्षा दें कि हम कैसे आपके दिये ज्ञान का सदुपयोग कर सकें क्योंकि यह संसार यात्रा वड़ी विकट है। इसमें सफलता तो तेरी ज्योति से ही मिलेगी। हमें अपनी ज्योति दिखाओ, हम उसे प्राप्त करें और उसे देखते उसके सहारे अन्त में तुझ तक पहुंच जावें।

(9) ओं तदेजति तन्नैजति, तद्दूरे तद्वन्ति के ।

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य वाह्यतः ॥ (यजुं 4015)

अर्थ—"तत् एजति" वह ब्रह्मगति करता है (तत् नः एजति) पर स्वयं गति नहीं करता है (विभ् त्वति) (तत् दूरे) वह दूर है (तत्-ड अन्ति के) वह ही समीप हैं। (तत्उ अस्य-सर्वस्य-अन्त) वह इस सब प्रत्यक्ष, अप्रत्क्ष जगत् के अन्दर है। (तत्-3-अस्य सर्वस्य वाह्यतः) वह ही सब प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत के बाहर भी है। जा पदार्थ दूर है वे समीप

नहीं, और जो समीप हैं वे दूर नहीं, यह बात सांसारिक और भौतिक पदार्थों में है। परन्तु परमात्मा अभौतिक है, चेतन, अनन्त, विभु है, जो समीप भी है और दूर भी है। हे भगवान। आप अत्यन्त कल्याणयुक्त गुणों से परिपूर्ण है। आप ही इस सारे जगत के चक्र को चला रहे हैं। आपकी शरण को त्यागकर जीव सारे जगत में भटकते हैं। जो आपको भूले हुए हैं, उनसे आप अत्यन्त दूर है। पर जो आपकी शरण में आन पड़े हैं, आप उनके सदा निकट हृदय के भीतर ही विराजमान् हैं, वे अपने हृदय के द्वार खोल कर आत्मा द्वारा आपके दर्शन करते हैं।

(10) त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्।

उर्वारुकमिव बन्धनात्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥ (ऋ. 7।59।12)

हम लोग जो (सुगन्धिं) शुद्ध गन्धयुक्त (पुष्टि वर्धनम्) शरीर, आत्मा और समाज के बल को बढ़ाने वाला (त्र्यम्बकम्) रुद्ररूप जगदीश्वर है, उसकी (यजामहे) निरन्तर स्तुति करें। उसकी कृपा से (उर्वारुकमिव) जैसे खरबूजा फल पक कर (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से छूटकर अमृत के तुल्य होता है, वैसे हम लोग (मृत्योः) प्राण वा शरीर के वियोग से (मुक्षीय) छूट जावें और मोक्ष सुख से (मा) श्रद्धारहित कभी न होवें।

मनुष्य को इस बात का बोध कराने के लिए कि वह अपने जीवन को कैसे सफल करे–खरबूजे से बढ़िया उपमा दी ही नहीं जा सकती। व्यक्ति मृत्यु के बन्धन से खरबूजे के फल की भाँति पककर मुक्त हो जाय।

खरबूजे की तुलना—

(1) खरबूजा जब पक जाता है तो डाल से स्वयं अलग हो जाता है, इसी प्रकार मुमुक्ष व्यक्ति भी संसार से मुक्त होते हुए यह देखे कि मेरे साथ कोई वासना तो नहीं आई है। (2) खरबूजा पकने पर सुगन्ध देता है, इसी प्रकार मनुष्य के कर्मों की सुगन्ध फैल रही है, तो वह छूटा हुआ है। (3) खरबूजे के समान उसका बाहरी रंग रूप भी आकर्षण हो, उसके जीवन की पुण्य गन्ध से वातावरण सुवासित हो जाता है। (4) खरबूजा पकने पर उसका रस समा नही पाता वह फूटकर बहने लगता है, इसी प्रकार साधक का हृदय जनता जनार्दन की सेवा करने को

सदैव लालापित रहता है। जैसे वाल पककर स्वतः झड़ जाते हैं, वैसे ही जब तेरी वासनाएँ पककर झड़ जायेगी तो तू मोक्ष का अधिकारी बन जायेगा।

प्रार्थना हे भगवन ! आप सदा हमारी रक्षा करते रहें। हमें सब प्रकार के सुख से भरपूर करते रहें। हम आपको भूल जाते हैं परन्तु आप हमारा कभी त्याग नही करते। हे अन्तर्यामि ! हम पर कृपा करो, हम आत्मा के शब्द को ध्यान से सुने। यह जीवन सदा ही निष्पाप रहे। हम आप से यह मांगते हैं कि आज से मन, वाणी, शरीर और आत्मा सब ही आपकी पूजा मे लगे रहे। आप ही हमारे परम, गुरू परम सहायक और परम रक्षक हैं। आपके द्वार को छोड़कर अब कहाँ जाएँ। आप ही हमारे रक्षक हैं। आपकी शरण में आये हुए को दुःख और भय कहाँ हो सकता है। बस आज से हम अपने आपको आपके पवित्र चरणों में समर्पण करके विनम्र प्रार्थना करते हैं कि आप हमें स्वीकार करे।

जीवन ज्योति [गीता का सार]

(1) क्यों व्यर्थ चिन्ता करते हो ? किससे व्यर्थ डरते हो ? तुम्हें कौन मार सकता है ? आत्मा न पैदा होती है, न मरती है।

(2) जो हुआ, वह अच्छा हुआ, जो हो रहा है, वह अच्छा ही हो रहा है और जो होगा, वह अच्छा ही होगा। तुम भूत का पश्चाताप न करो, भविष्य की चिन्ता न करो। वर्तमान चल ही रहा है।

(3) तुम्हारा क्या गया जो तुम रोते हो ? तुम क्या लाये थे, जो तुमने खो दिया ? तुमने क्या पैदा किया था जो नाश हो गया। न तुम कुछ लेकर आये थे, जो लिया, यहीं से लिया, जो दिया यहीं पर दिया। खाली हाथ आये, खाली हाथ चले। जो आज तुम्हारा है, कल किसी और का था, परसों किसी और का होगा। तुम इसे अपना समझ कर मग्न हो रहे हो। बस यही प्रसन्नता तुम्हारे दुःखों का कारण है।

(4) परिवर्तन संसार का नियम है। जिसे तुम मृत्यु समझते हो, वही तो जीवन है एक क्षण में तुम करोड़ों के स्वामी बन जाते हो, दूसरे ही क्षण तुम दरिद्र हो जाते हो। मेरा, तेरा, छोटा बड़ा अपना पराया,

सब मन से हटा दो, विचार से हटा दो, फिर सब तुम्हारा है, तुम सभी के हो।

(5) न यह शरीर तुम्हारा है, न तुम इस शरीर के हो। यह शरीर अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश से बना है और इसी में मिल जायेगा। पन्रतु आत्मा स्थिर है, फिर तुम क्या हो ?

6: तुम अपने आपको भगवान के अर्पित कर दो। यही सबसे उत्तम सहारा है। जो उसके सहारे को जानता है, वह भय चिन्ता और शोक से सर्वदा मुक्त हैं।

7. जो कुछ भी तू करता है, उसे भगवान के अर्पित करता चल। ऐसा करने से तू जीवन मुक्त का आनन्द अनुभव करेगा।

वेदों में ईश्वर भक्ति का स्वरूप

वेद वस्तुत: भक्ति के आदि श्रोत हैं। यदि हम भक्ति का स्वरूप समझलें तो वेदों में वर्णित भक्ति तत्त्व को समझने में सहायता होगी। भक्ति का लक्षण शास्त्रों में इस प्रकार दिया है। "सा परानुरक्तिरीश्वरे" अर्थात् परमेश्वर में अविचल और एकान्तिक भावना और आत्मसमर्पण की उत्कट आकांक्षा को भक्ति कहा गया है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि "भक्ति" शब्द भज्–सेवायाम् धातु से "क्तिन" प्रत्यय लगाकर सिद्ध होता अर्थात् भक्ति हृदय की उस भावना का नाम है जिसमें साधक जहाँ एक ओर पूर्ण भाव से ब्रह्म में अनुरक्त हो और पूर्ण रूप से अपने को ब्रह्मर्पण करने वाला हो, वहाँ ब्रह्म द्वारा रचित इस सारी सृष्टि के प्रति सेवक की भावना रखने वाला हो। ऋग्वेद के शब्दों में—

(1) मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानी समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि शमीशन्ताम् ।36।18।

वेद का भक्त कहता है कि "मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखू और सब प्राणी मुझे भी मित्र की दृष्टि से देखने वाले हों।"

(2) यस्य में हिमवन्तो महित्त्वा, यस्य समूद्रन्रसया सहायुः।
यस्ये मा: प्रदिशो यस्य बाहू, कस्मै देवाय हविषा विधि ।।25।12

जिसकी महिमा का ज्ञान हिम से ढके पहाड़ कर रहे हैं। जिसकी भक्ति का राग समुद्र अपनी सहायक नदियों के साथ सुना रहा है और ये

विशाल दिशायें जिसके बाहुओं के सदृश हैं, उस आनन्दस्वरूप प्रभु को मेरा नमस्कार है।

(3) एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।
अग्निं यमम् मातरिश्वानमाहुः ॥ऋ॥164।46॥

तत्त्व दर्शी लोग एक ही सद्वस्तु का विभिन्न नामों से निर्देश करते हैं, वे उस एक ही सत्ता को अग्नि, यम और मातरिश्वा के नाम से पुकारते हैं।

(4) सखाय आ नि पीदत्त, सविता स्तोभ्यो नु नः।
दाता राधांसि शुम्यति ।ऋ।1।22॥

मित्रों! आओ मिलकर बैठो! सबको उत्पन्न करने वाले, सबको गति देने वाले भगवान की, हमकों निश्चयपूर्वक, सामूहिक कीर्तन द्वारा उपासना करनी है। वह भगवान सब सिद्धयों को देने वाले पदार्थों का दाता है और वह हमें पवित्र बनाता है।

(5) स एव रसानां रसतमः परम परार्धे ॥छा. उ.

प्रभु भक्ति सबसे उत्कृट और सर्वोत्तम रस है, यह वह रस है जो अपने मन रूपी चाकत को माधुर्य से मतवाला वना देता है।

(6) सा परानुरक्तिरीश्वरे।

ईश्वर में परम अनुराग होना ही भक्ति है। भगवान का महात्म्य जानकर उसमें सबसे अधिक दृढ़ स्नेह होना ही भक्ति है और उसी से मुक्ति होती है। भगवान का महत्त्व न समझेंगे तो प्रेम कैसे होगा।

ईश्वरोपासना

ईश्वर की उपासना करना जीव का परम कर्त्तव्य होना चाहिए। जिस परमात्मा ने मानव शरीर, मन इन्द्रियाँ और भोगने के लिए जगत के पदार्थ दिये हैं, उसको हमें भूलना नहीं चाहिए। ईश्वर हमारी भक्ति का भूखा नहीं हैं। वह पूर्ण काम है। अपने गुण, कर्म, स्वभाव सुधारने के लिए तथा मुक्त होने के लिए हमको ही उसकी आवश्यकता है।

वैदिक ईश्वर भक्ति के तीन अंग हैं, स्तुति, प्रार्थना और उपासना। स्तुति—यह शब्द प्रशंसा के अर्थ में आता है। जो वस्तु जैसी हों, उसका

वैसा ही वर्णन करना स्तुति है। सगुण और निर्गुण भेद से स्तुति दो प्रकार की है। किसी पदार्थ में विद्यमान गुणों का यदि वर्णन किया जाय, तो उसकी सगुण स्तुति होगी जैसे ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वाकार, सर्वान्तर्यामि है, ऐसा कहना ईश्वर की सगुण स्तुति है क्योंकि इससे ईश्वर में पाये जाने वाले गुणों का बोध होता है। इसके विपरीत ईश्वर में न पाई जाने वाली बातों का वर्णन अर्थात् उसको अनादि, अजर, अमर, निर्विकार, निराकार तथा पापरहित बताया उसकी निर्गुण स्तुति है। (2) प्रार्थना—इस शब्द का अर्थ है याचना अर्थात् मांगना। मांगा उसी से जाता है जो देने में समर्थ हो। ईश्वर देने की सामर्थ्य रखता है। प्रार्थना भी सगुण और निर्गुण दो प्रकार की है। यदि किसी गुण की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की जाती है, तो वह सगुण प्रार्थना कहलाती है, जैसे "तेजोऽसी तेजों मयि देहि। वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि देहि आदि। इसके विपरीत किसी दोष अथवा दुर्गुण से बचने के लिए प्रार्थना की जावे तो वह निर्गुण प्रार्थना कहलाती है जैसे—"युयोध्यस्यज्जुहुराणमेनो भूयिष्टां ते नम उक्ति विधेम" हे प्रकाशस्वरूप परमात्मा! आप हमसे कुटिलता रूप पापाचरण से दूर रखिये ताकि हम आपकी बहुत सी स्तुति करें। (3) उपासना—उपासना भी दो प्रकार की है। ईश्वरीय गुणों को अपने जीवन में धारण करना सगुण उपासना कहलाती है जैसे ईश्वर न्यायकारी और सत्यस्वरूप है, हमें भी वैसा बनने का प्रयत्न करना चाहिए। दुर्गुण और दोषों से दूर रहने के लिए जो उपासना की जाती है वह निर्गुण उपासना कहलाती है। जैसे ईश्वर पाप रहित तथा क्लेशरहित है, हम भी पापों और क्लेशों से दूर रहें।

प्रण व जप

संध्या करने के पश्चात् सबको ओउम् का जप करना चाहिए। ओउम् प्रणव और उद्गीथ एक समान अर्थ वाले हैं। ऋग्वेदी ओं को प्रणव तथा सामवेदी उद्गीथ कहते हैं। (ओं) यह शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें अ, उ और म् अक्षर मिलकर "ओउम्" शब्द बना है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं जैसे आकार से विराट,

अग्नि और विश्वादि, उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तेजस तथा मकार से ईश्वर, आदित और प्रज्ञादि नामों का वाचक है।

ओउम् की जप विधि

"ओमित्येतदक्षरमुद गीथमुपासीत" छान्दो. उ. जो किसी भी प्रकार किसी काल में क्षीणता को प्राप्त नहीं होता, उस अक्षर "ओं" का वाणी द्वारा यथाविधि गान करो और उसी का मस्तिष्क द्वारा विचार करना तथा ध्यान चिन्तन भी करो।

ओउम् की तीन मात्राओं का जाप—ओं की एक मात्रा का अर्थ है, ओं की स्थूल शरीर के द्वारा उपासना—अर्थात् ऊंचे स्वर से मधुर ध्वनि करना। दो मात्रा का अर्थ है ओं की मानसिक उपासना—अर्थात् बिना होठ हिलाये हृदय में ही ओं का जप करना। तीन मात्रा का अर्थ है ओं की आत्मिक उपासना—स्थूल शरीर शरीर को भूलकर अपने हृदय में आत्मा व परमात्मा को अनुभव करना। ध्यान लगाकर अनुभव करो कि हृदय में स्वयं यह जाप हो रहा है। आत्मा परमात्मा में मिल गया है। इसके मिलाप से ओं, ओं, की ध्वनि गूंज रही है। ध्यान लगाने पर यह ध्वनि सुनाई देगी— इसी को अजयाजाप कहते हैं। जो व्यक्ति इस ओं नाम की तीनों मात्राओं की उपासना करते हैं और उस परम पुरुष परमदेव परमात्मा का हृदय में ध्यान करते हैं वे सूर्य के समान तेजस्वी बन जाते हैं। जैसे सांप केंचुली से छूट जाता है, इसी प्रकार वे भी सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। आत्मा का ध्यान भी ओं के द्वारा करो "ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानम्"।

आत्मबल कैसे बढ़ावें—प्रातःकाल जल्दी उठकर सूर्योदय से पूर्व स्नानादि से निवृत होकर, पवित्र स्थान में पूर्वाभि मुख होकर सुखासना या पद्मासन से बैठो। शांत, प्रसन्नवृति धारण करो। मन में दृढ़ भावना करो "मैं सब बन्धनों से मुक्त होकर ही रहूंगा। आँखें आधी खुली आधी बन्द रखो। अब फेफड़ों में खूब श्वास भरो और भावना करो कि श्वांस के साथ में सूर्य का दिव्य ओज भीतर भर रहा हूं। श्वास को यथाशक्ति भीतर टिकाये रखो। फिर ओं का लम्बा उच्चारण करते हुए श्वांस को धीरे-धीरे छोड़ते जाओ श्वांस से खाली होने के तुरन्त श्वांस मत लो। भीतर ही भीतर ओं का मानसिक जप करो। 10, 15 मिनट ऐसा प्रतिदिन अभ्यास करो। फिर

भावना करो "मैं जैसा होना चाहता हूँ वैसा होकर रहूँगा। सदा शांत वृत्ति, धारण वृत्ति, धारण करने का अभ्यास करो। आशावादी बने रहो।

धर्मशिक्षा

प्रश्न 1. धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—धर्म उन स्वाभाविक गुणों का नाम है कि जिसका होना वस्तु की सत्ता रखता है और जिसके न होने पर वस्तु की सत्ता स्थिर नहीं रह सकती जैसे—गर्मी और तेज (प्रकाश) अग्नि का धर्म है जहाँ अग्नि होगी वहाँ गर्मी और तेज अवश्य होगा।

प्रश्न 2. धर्म के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर—धर्माचार्य मनु के अनुसार—

धृतिः क्षमा दमो अस्तेयं शौचमिन्दिय-निग्रहः।
धीर्विद्या सत्मक्रोधो दशकं धर्मं लक्षणम्॥

धैर्य रखना, अपने प्रति अपराध करने वाले को दण्ड देने में समर्थ होने पर भी क्षमा करना, मन को वश में रखना, बाहर भीतर की शुद्धि रखना, इन्द्रियों को काबू में रखना, बुद्धि को सात्विक रखना, विद्या पढ़ना, सत्य बोलना और क्रोध न करना, ये धर्म के दस लक्षण हैं।

प्रश्न 3. ईश्वर कौन है ?

उत्तर—जो इस जगत को रचने वाला, पालने वाला और नाश करने वाला है, वह ईश्वर है।

प्रश्न 4. ईश्वर के होने में क्या प्रमाण है ?

उत्तर—संसार की प्रत्येक वस्तु का नियमानुसार कार्य करना और प्रत्येक वस्तु में नियम का होना।

प्रश्न 5. ईश्वर कहाँ है ?

उत्तर—कहाँ शब्द एक देशीय वस्तु के लिए आता है क्योंकि ईश्वर सर्व व्यापक है, इसलिए ईश्वर कहाँ है, यह प्रश्न ही अयुक्त है। जैसे कोई कहे कि दूध में सफेदी कहाँ हैं, दही में मक्खन कहाँ है, और मिश्री में मिठास कहाँ है तो जवाब होगा कि प्रत्येक स्थान में।

प्रश्न 6. ईश्वर सर्वव्यापक है तो दीखता क्यों नहीं ?

उत्तर – वर्तमान में वस्तु के न दीखने के 6 कारण है—(1) नेत्रों के बहुत समीप होने से (2) विशेष दूर होने से (3) अति सूक्ष्म होने से जैसे परमाणु (4) बहुत बड़ा होने से जैसे हिमालय (5) इन्द्रिय—चक्षु में दोष आ जाने से (6) आवरण होने से--दीवार के उस ओर की वस्तुओं को नहीं देख सकते।

प्रश्न 7. ईश्वर के न दिखने के कौन से कारण है ?

उत्तर–(1) ईश्वर सर्व व्यापक है, वह नेत्रों के बहुत निकट है (2) वह बहुत सूक्ष्म हैं।

उत्तर 8. जब ईश्वर निराकार है तो उसे कैसे देखें।

उत्तर—चिन्ता, शोक, हर्ष, दुःख-सुख आदि का क्या आकार है ? इसका आकार न होते हुए भी तुम्हें इनकी अनुभूति तो होती है। ये अन्दर प्रतीति का विषय बनते हैं। इसी प्रकार निराकार ईश्वर तुम्हारी प्रतीति, अनुभूति का विषय बन सकता है। यदि उसको अपने अन्दर भी देखना चाहो तो अन्दर भी अनुभव का विषय बन सकता है।

प्रश्न 9. ईश्वर क्या करता हैं ?

उत्तर – ईश्वर सृष्टि का निर्माण, पालन और संहार करता है वह जीवों को कर्मों के अनुसार फल देता हैं।

प्रश्न 10. संसार के निर्माण में ईश्वर का क्या प्रयोजन हैं।

उत्तर—संसार के निर्माण के दो निमित्त है (1) जीवों के पाप-पुण्य रूप कर्मों का फल भोग (2) मुक्ति की प्राप्ति।

प्रश्न 11. मुक्ति में जीव का लय होता है या वह पृथक विद्यमान रहता है ?

उत्तर—वह पृथक विद्यमान रहता है, वह आनन्द पूर्वक स्वतन्त्र विचरता है।

प्रश्न 12. मुक्ति के क्या साधन है ?

उत्तर—जो मुक्ति चाहें, उसके चार साधन हैं—(1) विवेक (2) वैराग्य (3) षट् सम्पत्ति (4) मुमुक्षत्व

विवेक—अर्थात् सत्याऽसत्य, धर्माऽधर्म, कर्तव्याऽकर्तव्य का निश्चय अवश्य करें। आत्मा-अनात्मा को पृथक-पृथक जानें।

(2) वैराग्य—सत्याचरण का ग्रहण और असत्याचरण का त्याग करना वैराग्य है। पृथ्वी से लेकर परमेश्वर पर्यंन्त पदार्थों के गुण, कर्म और स्वभावों को जानकर, प्रकृति से मन को हटाकर, सदा उस ईश्वर की आज्ञा के पालन और उपासना में तत्पर होना, इससे विरूद्ध न चलना और सृष्टि से उपकार लेना है, वह वैराग्य कहलाता है।

(3) षट् सम्पत्ति—(1) शम........आत्मा और अन्त'करण को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण में सदा प्रवृत रखना (2) दम—कर्मेन्द्रियों को बुरे कर्मों से हटा कर, शुभ कर्मों में लगाना (3) उपरति—दुष्ट कर्म करने वाले पुरुषों से सदा दूर रहना (4) तितिक्षा—निंदा-स्तुति, हानि-लाभ, जय-पराजय, हर्ष-शोक को छोड़ मुक्ति साधनों में सदा लगे रहना। (5) श्रद्धा—वेदादि-शास्त्रों और सत्योपदेष्टा महाशयों के वचनों पर विश्वास करना, (6) समाधान- चित्त की एकाग्रता होना।

(4) मुमुक्षत्व—जैसे भूखे प्यासे आदमी को अन्न-जल के अलावा कुछ भी अच्छा नहीं लगता, वैसे ही योगी उपासक को प्रभु दर्शन के लिए सदा लालायित्त रहना और मुक्ति के साधनों के अतिरिक्त किसी भी अन्य कर्म में प्रीति न रखना।

प्रश्न 13. मुक्ति एक जन्म में होती है या अनेक जन्मों में ?

उत्तर—अनेक जन्म में होती है। जब इस जीव के अविद्या, अज्ञान की गांठ हृदय से कट जाती है, सब संशय-सुविधाएं छिन्न हो जाते हैं और सब दुष्टकर्म क्षय को प्राप्त हो जाते हैं तभी मुक्ति के आनन्द को भोग सकता है।

प्रश्न 14. ईश्वर के क्या लक्षण है।

उत्तर—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामि, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है।

प्रश्न 15. जीव के क्या लक्षण है ?

उत्तर—इच्छा, द्वेष, सुख, दुख, ज्ञान और प्रयत्न हैं।

प्रश्न 16. ईश्वर और जीव में क्या-क्या समानताएं हैं ?

उत्तर—दोनों चेतन, अनादि, अविनाशी और निराकार है।

प्रश्न 17. ईश्वर और जीव में असमानताएं क्या-क्या हैं

उत्तर—ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्व-व्यापक, आनन्द स्वरूप हैं, स्वभाव से मुक्त और एक है। जीव अल्पज्ञ, अल्पसामर्थ्य, एक देशी और आनन्द से रहित हैं। ईश्वर के अपने गुण हैं, जीव के अपने गुण हैं। न ईश्वर जीव बन सकता है और न ही जीव ईश्वर बन सकता है।

प्रश्न 18. मुक्ति में जीव के साथ क्या रहता है ?

उत्तर—उसके स्वभाविक गुण रहते हैं, किसी वस्तु से उसका सम्बन्ध नहीं रहता। अपने भीतर व्यापक परमात्मा का अपने स्वभाविक गुणों द्वारा अनुभव करता है। इस अनुभव को ही आनन्द कहते हैं।

वेद-ज्ञान

प्रश्न 1. चारों वेदों के क्या नाम है तथा कौनसा वेद किस-किस ऋषि पर प्रगट हुआ ?

उत्तर—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद चार वेद हैं। अग्निऋषि पर ऋग्वेद, वायु ऋषि पर यजुर्वेद, आदित्य ऋषि पर सामवेद और अंगिरा ऋषि पर अथर्ववेद प्रकट हुए।

प्रश्न 2. इन चारों वेदों में कौन-कौन से विषय हैं ?

उत्तर—ऋग्वेद में पदार्थों के गुण वर्णन हैं, यजुर्वेद में कर्मकाण्ड, सामवेद में उपासना काण्ड और अथर्ववेद में विज्ञानकाण्ड वर्णन किये हैं।

प्रश्न 3 क्या परमात्मा ने ऋषियों को ज्ञान इसी प्रकार दिया, जैसे गुरूजी अपने शिष्य को पढ़ाते है ?

उत्तर – ज्ञान देने और पढ़ाने में अन्तर है। पढ़ाया जाता है शब्द द्वारा और ज्ञान डाला जाता हैं आत्मा में। परमात्मा सर्वव्यापक होने से ऋषियों की आत्मा में भी व्यापक है, इसलिये आत्मा में ज्ञान का प्रकाश किया।

प्रश्न 4. वेदों में क्या लिखा है ?

उत्तर—वेदों में मनुष्य को क्या करना चाहिए, यह सब लिखा हुआ है।

प्रश्न 5. उपवेद कितने हैं ?

उत्तर—चार हैं, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद और अर्थवेद।

प्रश्न 6. वेदांग कितने हैं, और उनके क्या नाम हैं ?

उत्तर—छः हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्ति, निरक्त, छन्द, ज्योतिष।

प्रश्न 7. शास्त्र कितने हैं, और उनके क्या नाम हैं. ?

उत्तर—शास्त्र छः हैं, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त, और मीमांसा।

प्रश्न 8. किस-किस ने कौनसा शास्त्र बनाया हैं।

उत्तर—न्याय शास्त्र गोतम मुनि ने, वैशेषिक शास्त्र कणादमुनि ने, सांख्यशास्त्र कपिलमुनि ने, योग शास्त्र पातंजली मुनि ने, वेदान्त शास्त्र व्यास मुनि ने, और मीमांसाशास्त्र जैमिनी महाराज का बनाया हुआ।

प्रश्न 9. वेदमंत्रों के ऋषि कौन थे ?

उत्तर—जिस-जिस मंत्र के गूढ़ अर्थों को जिस-जिस ऋषि ने प्रकाशित किया और प्रचार किया, उस ऋषि का नाम आदर के लिये उस मंत्र के साथ लिया जाता है।

प्रश्न 10. मंत्रों के देवता कोन होते हैं ?

उत्तर—जिस मंत्र में जिस वस्तु का वर्णन है, वह वस्तु उस मंत्र का देवता है।

प्रश्न 11. चारों वेदों में कितने मंत्र हैं ?

उत्तर—ऋग्वेद में 10552, यजुर्वेद में 1975, अथर्ववेद में 5978, तथा सामवेद में 1875 मंत्र है। इस प्रकार चारों वेदों में 20380 मंत्र हैं।

ब्रह्मचर्य क्या....क्यों....कैसे ?

ब्रह्मचर्य—यह दो शब्दों से मिलकर बना है, ब्रह्मा और चर्य। ब्रह्म के मुख्य अर्थ हैं ईश्वर, वेद, ज्ञान और वीर्य। इसी प्रकार चर्य का अर्थ

है चिन्तन, अध्ययन, उपार्जन और रक्षण । इस प्रकार ब्रह्मचर्य के निम्न अर्थ होते हैं–ईश्वर चिन्तन, वेदाध्ययन, ज्ञानोपार्जन और वीर्यरक्षण । याज्ञवल्क्य संहिता में लिखा है–

कर्मणा. मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वथा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागो- ब्रह्मचर्य प्रलक्षते ।

जिस अवस्था में मन, वचन और कर्म तीनों द्वारा सदैव मैथुन का त्याग हो, उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं । जिस फुटवाल की हवा निकल जावे, यह किसी काम की नहीं । जिस गन्ने का रस निकल जावे, उसमें तत्त्व नहीं रहता और जिस दूध का मक्खन निकल जावे, वह सारहीन हो जाता है । ठीक इसी प्रकार जिस मनुष्य में वीर्य नहीं होता, वह निस्तेज, निर्बल और मन्दबुद्धि हो जाता है ।

वीर्यरक्षण ही जीवन है !—वीर्य इस शरीर रूपी नगर का एक तरह से राजा ही है । यह वीर्य रूपी राजा यदि पुष्ट है, बलवान है तो रोग रूपी शत्रु कभी शरीर रूपी नगर पर आक्रमण नहीं कर सकते । परन्तु जिनका वीर्य रूपी राजा निर्बल है, उस शरीर रूपी नगर को कई रोग रूपी शत्रु आकर दुखी कर देते हैं । इसलिए कहा है–मरणं बिन्दुपातेन जीवनं विन्दु धारणात् । बिन्दुनाश (वीर्यनाश) ही मृत्यु है और वीर्य रक्षण ही जीवन है । देवताओं को देवत्व भी इसी ब्रह्मचर्य द्वारा प्राप्त हुआ है–

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्य: स्वराभरत ।। अथर्व !-5-14

ब्रह्मचर्य रूपी तप से देवों ने मृत्यु को जीत लिया है । देवराज इन्द्र ने भी ब्रह्मचर्य से ही देवताओं से अधिक सुख व उच्चपद को प्राप्त कर लिया है ।

वीर्य कैसे बनता है—वीर्य शरीर [की बहुत मूल्यवान धातु है । भोजन से वीर्य बनने की प्रक्रिया बड़ी लम्बी है ।

श्री सुश्रुताचार्य ने लिखा है –

रसाद्रक्तं तत्तो मांसं मांसान्मेद: प्रजायते ।
मेदस्यास्थि: ततो मज्जा मज्जाया: शुक्रसंभव: ।।

जो भोजन पचता है, उसका पहिले रस बनता है। पांच दिन तक उसका पाचन होकर रक्त बनता है। पांच दिन बाद रक्त से मांस, उसमें 5-5 दिन के अंतर से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा और मज्जा से अन्त में वीर्य बनता है। स्त्री में यह धातु रज कहलाती है। इस प्रकार वीर्य बनने में करीब 30 दिन और 4 घन्टे लग जाते हैं। वैज्ञानिक लोग बताते हैं कि 32 किलोग्राम भोजन से 800 किलोग्राम रक्त बनता है और 800 किलोग्राम रक्त से 20 ग्राम वीर्य बनता है। और 15 ग्राम या इससे कुछ अधिक वीर्य एक बार के मैथुन में पुरुष द्वारा खर्च होता है अर्थात् तीस दिन की कमाई समाप्त हो जाती है।

माली की कहानी—एक था माली। उसने अपना तन-मन-धन लगकर कई दिन परिश्रम करके एक सुन्दर बगीचा तैयार किया। उस बगीचे में भाँति-भाँति के मधुर सुगन्धयुक्त पुष्प खिले। उन पुष्पों को चुन-कर उसने इकट्ठा किया और उसका बढिया इत्र तैयार किया। फिर उसने क्या किया समझें आप–? उस इत्र को एक गन्दी नाली (मोरी) में बहा दिया। अरे! इतने दिनों के परिश्रम से तैयार किये गये इत्र को, जब कि उसकी सुगन्ध से उसका घर महकने वाला था, उसने नाली में बहा दिया। आप कहेंगे, वह माली बड़ा मूर्ख था, पागल था।, मगर अपने में ही देखें। वह माली कहीं और ढूंढने की जरूरत नहीं है। हम में से कई ऐसे ही माली हैं जो तीस दिन की कमाई को यूं ही सामान्य आवेग में खर्च कर देते हैं। क्या यह उस माली जैसा ही कर्म नहीं है। वह माली दो चार बार भूल करने के बाद किसी के सम-झाने पर संभल गया होगा, फिर वही की वही भूल नहीं दोहराई होगी परन्तु आज तो कई लोग वही भूल दोहराते रहते हैं, फिर पश्चाताप ही हाथ लगता है। इसलिये शरीर के बल-बुद्धि की सुरक्षा के लिये वीर्य रक्षण बहुत आवश्यक है। योग दर्शन के साधनपाद में ब्रह्मचर्य की महत्ता इन शब्दों में बताई है—

"ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ" ब्रह्मचर्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर सामर्थ्य का लाभ होता है।

अथर्ववेद—रूजन परूजन मृणन् परिमृणन् ।
म्रोकों महा खनों निर्दाह-आत्मदूषिस्तनू दूधिः ।।

अर्थ—

यह काम रोगी बनाने वाला है, बहुत बुरी तरह रोगी बनाने वाला है, मार देने वाला है, वहुत बुरी तरह मारने वाला है । यह टेढ़ी चाल चलता है, मानसिक शक्तियों को नष्ट कर देता है । शरीर में से स्वास्थ्य बल, आरोग्यता आदि को खोद-खोद कर बाहर फैंक देता है । शरीर की सब धातुओं को जला देता है । आत्मा को मलीन कर देता है । शरीर के वात, पित्त, कफ को दूषित करके उसे तेजोहीन कर देता है ।

वीर्य रक्षा के उपाय—(1) प्रातःकाल चार, साढे चार बजे उठ जाना चाहिए । (2) उचित आसन एवं व्याम करे–प्रातः रोज 3–4 मिनट रोज दोड़ें और तेजी से चलें । सूर्य नमस्कार 13 अथवा उससे अधिक करें । व्याम से अधिक उपयोगी आसन हैं । वीर्यरक्षा की दृष्टि से सर्वांगाराण, मयूरासन, पादपश्चिमोत्तानासन बहुत अच्छे आसन हैं । (3) दुर्व्यसनों से दूर रहें शराब, बीड़ी, सिगरेट, जर्दा आदि का प्रयोग न करें ।(4) सादा रहन सहन बनायें – लाल रग के भड़कीले एवं रेशमी कपड़े नही पहने । तेल फुलेल और भाँति-भाँति के इत्रों का प्रयोग न करें । सादा रहन-सहन ही बड़प्पन का चिह्न है । (5) उपयुक्त आहार क्या खायें, कब खाएँ, कैसे खाएँ और कितना खाएँ इसका सदैव ध्यान रखे । भोजन भूख से कुछ कम खाएं । रात्री को भोजन कम करें । बहुत गर्म-गर्म भोजन व पेय पदार्थ न खाएँ और न पिवें । अधिक मिर्च मसाले, तीखा, खट्टा, चटपटेदार भोजन न करें । कभी भी मल मूत्र की शिकायत हो तो, उसे रोके नहीं । रात को बांई करवट लेकर ही सोना चाहिए । (6) उपवास रखें—पेट को आराम देने के लिये कभी-कभी निराहार भी रहना चाहिए । उपवास से पाचन शक्ति बढती है । (7) दृढ़ संकल्प करने से वीर्य रक्षण में मदद मिलती है । गन्दे विचारों को मन में न आने दें । जैसा आप सोचते हैं, वैसे ही आप हो जाते हैं । (8) सत्संग करें—अच्छे विद्वानों और महिलाओं का सत्संग करो जिससे मन विचार

अच्छे वनेंगे । इसी प्रकार कभी भी गन्दी पुस्तकें व गन्दे चित्र मत देखो इनका गलत प्रभाव मन पर पड़ जाता हैं और फिर आसानी से यह प्रभाव नहीं हटता। (9) स्त्री जाती के प्रति मातृभाव रखें-अपने से छोटी आयु की स्त्री को बहिन या पुत्री के समान तथा बड़ी आयु वाली स्त्रियों को माता के समान देखें और उनका आदर करें। (10) त्रिबन्धयुक्त प्राणायाम और योगाभ्यास करें—त्रिवन्ध करके प्राणायाम करने से विकारी जीवन सहज भाव से निर्विकारिता में प्रवेश करने लगता है। मूलवन्ध से विकारों पर विजय पाने का सामर्थ्य आता है। उड्डीयान वन्ध से आदमी उन्नति में विलक्षण उड़ान ले सकता है। जालन्धर बंध से बुद्धि विकसित होती है। कम से कम प्रतिदिन 12 प्राणायाम करने चाहिए। ये त्रिबन्ध युक्त प्राणायाम बाह्य कुम्भक के साथ करने से शीघ्र ही अपना प्रभाव दिखाते हैं और वीर्य की उर्ध्वगति हो जाती है। वीर्य रक्षक चूर्ण—सूखे आँवलों से वीज निकाल कर, उनके छिलकों को कूट कर उसका चूर्ण वनालें। वाजार में भी आज-कल आँवलों का चूर्ण तैयार मिलता है। जितना चूर्ण हो, उससे दुगुनी मात्रा में मिश्री (खाण्ड) का चूर्ण उसमे मिला लें। रात को सोने से आधा घण्टा पहिले रोज एक चम्मच पानी के साथ इसे ले लिया करें। यह चूर्ण वीर्य को गाढा करता है, कब्ज दूर करता है, वातपित-कफ के दोष मिटाता है और संयम को मजवूत करता है।

वीर्य शक्ति–संचय के चमत्कार—वीर्य शक्ति के एक-एक अणु में वहुत महान शक्ति छिपी है। इसी के द्वारा शंकराचार्य, हनुमान, भीष्म पितामह, महावीर, गुरु नानक और स्वामी दयानन्द जैसें महापुरुष धरती पर अवतीर्ण हुए हैं। बड़े-वड़े वीर योद्धा, वैज्ञानिक वीर्य शक्ति की एक वूंद में छिपे हैं। भीष्म पितामह वीर्यशक्ति के प्रताप से ही महाभारत के युद्ध में 250 वर्ष के होकर भी दस दिनों तक कौरव सेना का सचालन किया और पाण्डवों के छक्के छुड़ा दिये। यह ब्रह्मचर्य का ही प्रताप था कि भीष्म मौत पर भी विजय प्राप्त कर सके। स्वामी दयानन्द के जीवन से सम्वन्धित घटनाएँ—(1) एक बार किसी गाँव में

बरसात के दिनों में एक किसान की गाड़ी कीचड़ में फंस गई। किसान ने बैलों को खूब पीटा किन्तु गाड़ी टस से मस न हुई। उसी समय स्वामी दयानन्द उधर से निकले। स्वामी जी ने दोनों बैलों को जूड़े से निकाल दिया और स्वयं कपड़े निकाल कर कीचड़ में चले गये तथा गाड़ी के जूड़े को कन्धे पर रख कर कीचड़ से बाहर निकाल दिया।

(2) दुसरी घटना जालन्धर शहर की है। स्वामी जी के भाषण सुनने के लियें वहाँ के रईस सरदार हरीसिंह जी भी आते थे। एक दिन स्वामी ने ब्रह्मचर्य के महत्त्व पर प्रकाश डाला और कहा कि ब्रह्मचर्य में महान शक्ति है। इस पर सरदार जी ने कहा कि प्रत्यक्ष में दिखाओ। उस समय तो स्वामी जी ने कुछ नहीं कहा। कुछ दिनों बाद फिर सरदार जी चार घोड़ों की बग्गी में बैठ कर व्याख्यान सुनने आये। व्याख्यान सुनने के पश्चात् जब वे अपनी बग्गी में बैठ गये तो स्वामी दयानन्द ने पीछे से बग्गी का पहिया पकड़ लिया। घोड़ो को बार-बार मारने पर भी जब बग्गी न चली तो सरदार जी ने पीछे की ओर देखा। स्वामी ने कहा कि यह ब्रह्मचर्य की शक्ति है। सरदार जी बग्गी से उतरे और स्वामी जो के पैरो में पड़ गये।

(3) एक गाँव में रास्ते में दो साँड लड़ रहे थे। किसी की हिम्मत नहीं थी कि उनको हटा दे। उसी समय स्वामी जी का उधर से गुजरना हुआ। स्वामी जी ने दोनों के सींग एक एक हाथ से पकड़ कर अलग कर-दिये।

(4) एक गाँव में कुछ स्त्रियाँ एक रहट के पास खड़ी थी। स्वामी जी जब उधर से गुजरे तो पूछा क्यों खड़ी हो। एक स्त्री ने कहा-बाबा! इस गाँव में एक पहलवान है, वही इस रहट को चला सकता है। हम उसके आने की इन्तजार कर रही हैं। इस पर स्वामी जी ने स्वयं रहट चला दिया और स्त्रियाँ पानी भर कर अपने गाँव को लौट रही थी। रास्ते में उन्हें वही पहलवान मिला। उसने पूछा कि रहँट किसने चला दिया। स्त्रियों ने उस बाबा को बताया। पहलवान तेजी से भागा और स्वामी को आगे जाकर पकड़ लिया। उसने कहा कि तू भी

पहलवान हूँ, मेरे साथ कुस्ती कर लें। स्वामी जी ने कहा कि कुस्ती वाद में करूगाँ, पहिले तुम मेरे इस गीले लंगोट में से कुछ बूंद पानी निकाल दो। पहलवान ने पूरी ताकत से लंगोट को निचोड़ा और काफी देर तक पचने पर भी एक भी बूंद न निकल सकी। अन्त में स्वामी जी ने लंगोट को निचोड़ा और उसमें से कई बूंद पानी की टपका दी। पहलवान शर्मिन्दा होकर चला गया।

प्रेरणा-स्रोत

ईश्वर सहायक है, इस वात का सदा स्मरण रखना चाहिए कि सभी विघ्नों का नाश करने वाले और साधना में सहायता पहुँचाने वाले भगवान, हमारे पीछे रहकर सदा हमारी रक्षा करते हैं। युद्ध क्षेत्र में युद्ध करते हुए योद्धा के मन में इस स्मृति से महान उत्साह बना रहता है कि मेरे पीछे विशाल सेना को लिए सेनापति स्थित है। भक्त को इससे भी अनन्त गुणा अधिक उत्साह होना चाहिए क्योंकि उसके पीछे अनन्त शक्ति सम्पन्न भगवान का वल है। (2) पुलिस का सशस्त्र गारद साथ रहने पर सुरक्षा की निश्चितता हो जाती है और निर्भय रहा जा सकता है। इसी प्रकार जिसे ईश्वर की सर्वशक्ति सत्ता पर विश्वास है, उसे किसी से भी न डरना पड़ेगा। (3) कोयला जव तक अग्नि में रहता हैं, अग्नि के जैसा रंग और गुणों का हो जाता है। यदि अग्नि से अलग गिर जाता है तो काला और ठण्डा हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्य भी भगवान से अलग होकर दुःखी और निराश हो जाता है। (4) अनेक जन्मों के महान पुण्य कर्मों से यह मनुष्य देह प्राप्त हुआ है। इसी मानव शरीर में आत्म ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यही इस मानव जीवन की विशेषता है। भोग तो सभी योनियों में प्राप्त होते हैं और भोगे भी जाते हैं। यदि इस सुन्दर देह को प्राप्त करके भी मनुष्य ने संसार के भोग ही भोगे, तव तो इस जीवन की तुलना पशु आदि के साथ की जा सकती है। (5) मोक्ष के जिज्ञासु को अष्ट प्रकार के मैथुन से अलग रहकर, एकान्त शान्त स्थान में लम्बे समय तक योग साधन करना चाहिए और अपनी इन्द्रियों को कावू में

रखना चाहिए। (6) मानव बड़ा मूर्ख है कि सब कुछ देखते हुए भी कि यह काल हमारे जीवन की एक एक कड़ी को समाप्त किये जा रहा है। एक दिन यह सम्बन्ध विच्छेद कर देगा। हमारा मरण हो जायेगा। अतः शीघ्र से शीघ्र ही अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त कर लें अन्यथा यह शरीर कभी भी मौत के मुँह में जा सकता है जैसा भर्तृहरि ने कहा है—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता, तपो न तप्ता वयमेव तप्ता।
कालो न यातो वयमेव याता, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा॥

अर्थ—हमने भोग नहीं भोगे किन्तु भोगों ने ही हमें भोग लिया हमने तप नहीं तपा, किन्तु हम ही तपे गये, काल व्यतीत नहीं हुआ, हम ही व्यतीत हो गये, तृष्णा बूढी न हुई, हम ही जीर्ण हो गये।

(7) परमात्मा की प्राप्ति स्वयं अपने किये ही होगी। कोई दूसरा हमारे लिए इस कार्य को नही कर सकता। संसार का कोई काम बाकी रह गया तो हमारे पीछे हमारे उत्तराधिकारी कर लेगें, पर परमात्मा की प्राप्ति में कमी रह गई तो हमको पुनः जन्म लेना पड़ेगा। इसलिए जो काम हमारे किये ही होगा दूसरे से नहीं, उसी में समय लगाना चाहिए।

(7) जैसे कोई अमृत के घड़े के पास बैठा हो तो भी विना अमृत के पीये अमर नहीं होता, वैसे ही बिना अभ्यास किये अमर नहीं होता।

भजन

ओं का नाम जीवन में गाते चलो।
मन को विषयों के विष से हटाते चलो।
ओं ही सब ज़गह में समाया हुआ,
भूल को पकड़ों, सब कुछ ही पाते चलो ॥1॥
सादा जीवन विचारों को ऊँचा करो।
सदाचारी वनो और बनाते चलो ॥2॥
इन्द्रिय रूपी घोड़ों को काबू करो।
इनमें संयम के कोड़े लगाते चलो ॥3॥
टूट जाये न माला कहीं प्रेम की।
प्रेम गंगा परस्पर बहाते चलो ॥4॥

ऋषियों के चलो तुम चरण चिह्न पर।
शिक्षा मानव धर्म की सिखाते चलो ॥5॥
बस ब्रह्मानन्द भूलो न इस बात को।
ओं का नाम लो जब यहाँ से चलो ॥6॥

2

ओं बोल मेरी रसना घडी घडी–2

सकल काम तज ओं नाम भज, मुख मण्डल में पड़ी-पड़ी ॥1॥
ओं नाम सर्वोपरि प्रभु का, यूँ कहे वेद की कड़ी-कड़ी ॥2॥
पल-पल पर ले जाना चाहती, तेरी मौत सिराने खड़ी-खड़ी ॥3॥
रागद्वेष तज व्यास लगा ले, ओं नाम की झड़ी-झड़ी ॥4॥
पूर्ण ब्रह्म करेगें पूरण, तेरी शुभ आशाएँ बड़ी-बड़ी ॥5॥

(3)

ईश्वर तुम्ही दया करो, तुम बिन हमारा कौन है।
दुर्बलता दीनता हरो, तुम बिन हमारा कौन ॥
माता तू ही तू ही पिता, बन्धु तू ही, तू ही सखा ।
केवल तुम्हारा ही आसरा, तुम बिन हमारा कौन है ॥1॥
जग को रचाने वाला तू, दुःखड़े मिटाने वाला तू ।
बिगड़ी बनाने वाला तू, तुम बिन हमारा कौन है ॥2॥
तेरी दया को छोड़ कर कुछ भी नहीं हमें खबर ।
जाएं तो जाएं हम किधर, तुम बिन हमारा कौन है ॥3॥
बालक सभी हैं हम तेरे, तू है पिता परमात्मा ।
हम पै हो बस तेरी दया, तुम बिन हमारा कौन है ॥4॥
तेरा भजन, तेरा मनन, भक्ति तेरी, तेरी लगन ।
आए हैं हम तेरी शरण, तुम बिन हमारा कौन है ॥5॥

(4)

प्रभु मेरे जीवन को जीवन बनादो, हृदय-से मेरे भीरूता भय भगादो।
बहुत पी चुके वासना विष की प्याली, अब ज्ञान अमृत का प्याला पिलाओ ॥
छाई हुई है निराशा अंधेरी, कृपा करके आशा का दीपक जलादो ॥

तुम्हारे बने तुमको अपना बनाले, बने जिस तरह ऐसा [illegible] बनालो।
कहाँ तुमको ढूँढूँ कहाँ तुमको पाऊँ, मिलोगे कहाँ यह बतादो-बतादो॥

(5)

क्यों वेष बदलता रहता तू, ये खेल निभाना मुश्किल है ।
तू लाख छिपाले दुनियाँ से, ईश्वर से छिपाना मुश्किल है ॥
क्यों चादर ओढ़ के नेकी की, बदियों को छिपाया करता है ।
अपनी खुशियों की खातिर, किसी का खून बहाया करता है ॥
इस खून के गहरे दागों से दामन को बचाना मुश्किल है ॥1॥
मानव चोला तूने पाया, क्यों दानवता के काम करे ।
सब काम करे उल्टे ही तू, औरों को क्यूं बदनाम करे ।
चलतों को गिराना आसान है, गिरतों को उठाना मुश्किल है ॥2॥
ओं नाम का सुमरन कर, शुभ कर्मों से प्रीति लगाता चल ।
उपकारी बनकर जीवन में दुखियों को गले लगाता चल ।
हँसतों को रुलाना आसान है, रोतों को हँसाना मुश्किल हैं । ॥3॥

(6)

मुझे कौन पूछता था, तेरी बन्दगी से पहले ।
मैं तुम्हीं को ढूँढता था, इस जिन्दगी से पहिले ।
मैं खाक का जरा था, और क्या थी मेरी हस्ती ।
मैं थपेड़े खा रहा था, जैसे तूफां में कस्ती ॥
दर दर भटक रहा था—तेरी बन्दगी से पहिले ॥1॥
मैं था इस तरह जहां में, जैसे खाली सीप होती ।
मेरी बढ़ गई है कीमत, तू ने भर दिये हैं मोती ॥
मुझे मिल गया सहारा, चरणों में आके तेरे ॥2॥
यूं तो जहां में लाखों, तेरे जैसा कौन होगा ।
तू है रहमतों का दरिया, तेरे जैसा कौन होगा ॥
मजा क्या था जिन्दगी में, तेरी बन्दगी से पहिले ॥3॥
तू जो मेहरवां हुआ तो, सारा जग भी मेहरवां हैं ।
यह जमी भी मेहरवां हैं, आकाश भी मेहरवां है ।
ना गीत था ना गला था, तेरी बन्दगी से पहिले ॥4॥

(7)

मैंने मानुष जन्म तुझको हीरा दिया,
तू वृथा ही गंवाये तो मैं क्या करूँ ।
मूल वेदों में सब कुछ बता ही दिया ।
जो समझ में न आये तो मैं क्या करूँ ॥

अन्न दूध आदि खाने को सब कुछ दिया ।
मेवा मिष्ठान्न भी मैंने पैदा किया ॥
फिर निर्दयी हो जीवों को सताने लगा ।
तू अगर माँस खाये तो मैं क्या करूँ ॥1॥

दीन दुखियों के दिल को दुखाने लगा,
तूने जैसा किया वैसा पाने लगा ॥
रात दिन पाप में मन लगाने लगा,
आज आँसू बहाये तो मैं क्या करूँ ॥2॥

नाम मेरा तेरा पाप भी काट दे,
पाप करने जो मन को तू डाट ले,
मैं तो चाहता हूँ आजा तू मेरी शरण,
पर जो तू ही न आये तो मैं क्या करूँ ॥3॥

छोड़कर छल कपट आजा मेरी शरण,
सहज कट जायें तेरा यह आवागमन,
जो कोई नहीं मानेगा, सद्गुरू वचन,
यूँ ही चक्कर लगाये तो मैं क्या करूँ ॥4॥

(8)

तेरी याद जब से भुलाई प्रभु है,
ये मुसीबत उसी दिन से आई प्रभु है ।
मलिन आत्मा रात दिन रो रही है,
बुराइयों की दुनियाँ बसाई हुई है ॥1॥
हम अज्ञानता वश तुम्हें दोष देते,
जो बोया उसी की कटाई हुई है ॥2॥
मैं बेचैन व्याकुल मुसीबत जुदा हूँ,
तू ही एक मेरा सहाई प्रभु है ॥3॥

सिवा तेरे है कोन मेरी सुने जों,
यह दुनियाँ मेरी अजमाई हुई हैं ।।4।।
जो सुनता है सबकी, वो मेरी सुनेगा,
तेरे दर पे धूनी रमाई प्रभु है ।।5।।
नहीं देश का साथी दुनियाँ में कोई,
तेरे आगे झोली फैलाई प्रभु है ।।6।।

(9)

प्रभु दर्शन आये थे, प्रभु दर्शन करना भूल गये ।
वेदोक्त डगर पर चलना था, उस पथ पर चलना भूल गये ।
यम नियमों के पालन द्वारा अपने को निर्मल कर न सके,
ऋषियों की भाँति-ज्योति में ज्योति को मिलाना भूल गये ।।
अपनी ही भूलों के कारण, भगवान को समझा दूर सदा ।
अन्तर्यामि का हम मन ही मन, हम ध्यान लगाना भूल गये ।।
उलटी मतियों के मतवाले, बट गये हजारों भागों में,
खुद खेले पापाचारों में, शुभ कर्म कमाना भूल गये ।।
संसार में जितने मानव हैं, भाइयों का सबसे नाता था,
हम हिंसावादी बन बैठे, देवों का जमाना भूल गये ।।
भूले समझाने देश की फिर, प्रभु भक्त दयानन्द आये थे ।
ऐसे उपकारी नेता की, आज्ञा को निभाना भूल गये ।।

(10)

पास रहता हूं तेरे सदा मैं अरे, तू नहीं देख पाये तो मैं क्या करूं ।
मूढ मृग तुल्य चारों दिशाओं में तू, ढूंढने मुझको जाये तो मैं क्या करूं
कोसता दोष देता मुझे है सदा, मुझको यह न दिया, मुझको वह न दिया ।
श्रेष्ठ सबसे मनुज तन तुझे दे दिया, सब्र तुझको न आये तो मैं क्या करूं ।
तेरे अन्तःकरण में विराजा हुआ, कर न यह पाप कहता हूं संकेत से,
लिप्त विषयों में हो सीख मेरी भलि, ध्यान में तू न लावे तो मैं क्या करूं ।
जाँच अच्छे बुरे कर्म में हो सके, इसलिए बुद्धि मैने तुझे दी अरे,
किन्तु तू मन्द भागी अमृत छोड़कर, घोर विष आप खाये तो मैं क्या करूं ।
फूल फल शाक मेवा दुग्ध आदि सम दिव्य आहार मैने तुझे हैं दिये,
तू तम्बाकू नशे मद्य माँस आदि खा, रोग तन में बसाये तो मैं क्या करूं ।

अति मनोहर सरस भव्य द्रव्यों भरा, विश्व सुन्दर प्रकाशार्थ मैने रचा,
अपनी करतूत से स्वर्ग वातावरण, नरक तू ही बनाये तो मैं क्या करूँ ।।

(11)

उस प्रभु की है महिमा बड़ी, याद करले घड़ी दो घड़ी ।
घंटी बज जाय कब कूच की, मौत हरदम सिराने खड़ी ।।
किन्ही शुभ कर्मों का फल है यह, तुझे मानव का चोला मिला,
जो आया है जायेगा वो, बन्द होगा न यह सिलसिला ।
टूट श्वासों की कब जा लड़ी, याद करले घड़ी दो घड़ी ।।1।।
जो करना है ले आज कर कुछ खबर प्यारे कल की नहीं,
मानव चोले को करले सफल, ढील दे इसमें पल की नहीं ।
वेद की कहे एक एक कड़ी, याद करले घड़ी दो घड़ी ।।2।।
इस जवानी पर इतरा न तू, बात बातों में मुक जायेगी ।
ऊभरा सीना सिकुड जायगा, और कमर तेरी झुक जायगी ।
हाथ लेकर चलेगा छड़ी, याद करले घडी दो घडी ।।.।।
भौतिकवादी चकाचौंध में, न हो इतना मतिमंद तू ।
सच्चिदानन्द सुख कन्द की, जा शरण में ले आन्नद तू ।
नीर कवि जाये विपदा हरि–याद करके घड़ी दो घड़ी ।।

(12)

पाके नरतन बता क्या किया, नाम प्रभु का कभी ना लिया ।
काम आया किसी के नहीं, भार बनके जहाँ पर जिया ।।
वेश भूषा व रंग-रूप से, श्रेष्ठ इन्सान मालूम पड़ा,
कर्म हमने जो तेरे लखे, निकला हैवान जालिम बड़ा ।
खून निर्बल जनों का पिया, नाम प्रभु का कभी ना लिया ।।1।।
देख पशु पक्षियों को जरा, सारे जग की सफाई करें,
जिन्दगी भर रात दिन, सारे जग की भलाई करें ।
कत्ल उनका भी तूने किया–नाम प्रभु का कभी ना लिया ।।2।।
द्वेष अपनों से ऐसे किया, जैसे कुत्तों की जाति करे,
क्रोध में ऐसे जलता रहा, जैसे भट्टी का ईंधन जले ।
नाश अपना स्वयं का किया, नाम प्रभु का कभी ना लिया ।।3।।

तेरा इसमें ही उत्थान था, जो बिगड़ कर जाता सम्भल।
कर स्वीकार निज भूलों को, होता नरदेव जीवन सफल।
वक्त अनमोल सब खो दिया—नाम प्रभु का कभी ना लिया ॥4॥

(13)

क्यों फूलों के एवज में, काँटे सजा रहा हैं,
जीवन सुधार कर लें, यह वक्त जा रहा हैं।
विषयों में होके अन्धा, दिन रात झूमता है,
माया करूँ इखट्ठी, इस धुन में घूमता है।
प्रभु को भुला के मूर्ख, सब कुछ भुला रहा—जीवन
धड़कन ये तेरे दिल की, तुझसे ही कह रही है,
कागज की नाँव तेरी, तूफाँ में वह वह रही है।
नैय्या न डूब जावे, अंधेरा छा रहा है—जीवन सुधार
यह दुनिया सराये फानी, यहाँ कितने ही आ चुके हैं,
वो मधुप तेरे जैसे, यहाँ लाखों ही जा चुके हैं।
उनका सफल है जीना, हरिगुण जो गा रहे हैं—जीवन—

(14)

मेरे दाता के दरबार में, सब लोगों का खाता,
जैसा कर्म करे कोई नर, वैसा ही फल पाता ॥
क्या साधु, क्या सद् गृहस्थी, क्या राजा क्या रानी,
प्रभु की पुस्तक में लिखि है, सबकी कर्म कहानी,
करता वह जो जमा खर्च का, सही हिसाब लगाता—मेरे
नहीं चले रिश्वत उसके घर, नहीं चले चालाकी,
उसकी अपने लेन देन की, बातें बड़ी हैं बाकी,
पुण्य का वेड़ा पार करे वह, पाप की नाव डुबाता—मेरे
करता है हिसाब सबका, एक आसन पर डटके,
उसका फैसला कभी ना बदले, लाख कोई सिर पटके,
समझदार तो चुप रह जाता, मूर्ख शोर मचाता-मेरे—
बड़ा कड़ा कानून है उसका, बड़ी कड़ी मर्यादा,

किसी को थोड़ी कम नहीं देता, किसी कोई नहीं ज्यादा।
इसीलिए तो कुल दुनियाँ का, नगर सेठ कहलाता ।।मेरे—

(15)

उमर भर किया ना प्रभु का भजन, ऐसा जीवन बिताने से क्या फायदा।
चित्त की वृत्तियाँ यों ही मैली रही,ऐसे गंगा में नहाने से क्या फायदा ।।
भजन स्वाध्याय सत्संग किया नहीं, नाम प्रभु का मुख से लिया नहीं।
जब योग के रंग में रंगा नहीं, ऐसे बाबा कहने से क्या फायदा ।।1।।
पिता माता तेरे तो भूखे रहे, प्रेम से उनको भोजन खिला न सका,
फिर कनागत में पूरी-पकवान बना, ऐसे ब्राह्मण जिमाने से क्या फायदा ।।2।।
भाई–भाई परस्पर लड़ते रहे, प्रेम सद्भाव कुछ भी बना ना सका,
जावे मन्दिर में भरत श्रीराम के, प्रेम के गीत गाने से क्या फायदा ।।3।।

(16)

सफल गर यह जीवन बनाना है तुमको,
जो पापों से पीछा छुड़ाना है तुमको।
गर अज्ञान दिल से हटाना है तुमको,
यदि भाग्य सोया जगाना है तुमको।
तो सत्संग में तुमको जाना पड़ेगा,
तुम्हें अपना जीवन बदलना पड़ेगा।
बुराई के मार्ग से टलना पड़ेगा,
गिरावट से उठकर उठना पड़ेगा।
सब झूठे मतो से हटना पड़ेगा,
धर्म रूपी साँचे में ढ़लना पड़ेगा।
तुम्हें अपना जीवन बदलना पड़ेगा।

(17)

भरोसा कर तू ईश्वर पर, तुझे धोखा नहीं होगा
यह जीवन बीत जायेगा, तुझे रोना नहीं होगा ।।
कभी दुःख है कभी सुख है, यह जीवन धूप छाँया है।

हँसी में ही बिता डालो, बितानी ही यह माया है।

जो सुख आये तो हँस लेना, जो दुःख आये तो सह लेना,
ना कहना कुछ भी गज से, प्रभु से ही तू कह लेना ।।
यह कुछ भी तो नहीं गज में, तेरे बस कर्म की माया,
तू खुद ही धूप में बैठा, लखे निज रूप की छाया ।
कहाँ वह था, कहाँ तू था कभी तू सोच ओ वन्दे,
झुकाकर शीश को कह दे, प्रभो वन्दे प्रभो वन्दे ।।

(18)

सारी दुनियाँ को देखा है हमने, कोई नजरों में जँचता नहीं है ।
एक दयानन्द ऐसा मिला है, जिसके जीवन में धब्बा नहीं है ।
जिसने झूँठे को झूँठा बताया, और सच्चे को सच्चा बताया,
सच्चा वेदों का मार्ग बताया, और कहा इसमें कोई पाखण्ड नही है ।।1।।
जब घर से चला था अकेला, पास धेला ना चेली, न चेला,
जिसका ईश्वर ही एक रहेला, वो जालिम से डरता नहीं है ।।2।।
लाखों पतितों को पावन बनाया, और गिरतों को गले से लगाया,
नारी जाति का गौरव बढ़ाया, तेरो महिमा की सीमा नहीं है ।।3।।
उसने आर्य समाज बनाई, सोती भारत की जनता जगाई,
आजादी की महिमा बताई, आर्य बन्धन में रहता नहीं है ।
उसने हमको तो अमृत पिलाया, हमने बदले में जहर पिलाया,
फिर इज्जत से रहना सिखाया, कि आत्मा कभी मरता नहीं है ।।

(19)

तेरी मेहरबानी का बोझ है इतना, कि उसको उठाने के काबिल नहीं हूँ,
लगाता हूँ जोर है मुझमें है जितना, कि तुझको रिझाने के काबिल नहीं हूँ ।
तूने अदा की मुझे जिन्दगानी, मगर तेरी महिमा मैंने न जानी,
कर्जदार तेरी दया का हूँ इतना, कि कर्ज चुकाने के काबिल नहीं हूँ ।।1।।
तमन्ना यही है कि सर को झुकालू, तेरा दीद जी भर के एक बार पालूँ,
सिवाय फूल श्रद्धा के टुकड़ों के दाता, मैं कुछ भी चढ़ाने के काबिल नहीं ।
जमाने की चाहत ने मुझको मिटाया, तेरा नाम हरगिज जुबाँ पर न लाया,
गुनहगार हूँ मैं, खतावार हूँ मैं, तुम्हें मुँह दिखाने के काबिल नहीं हूँ ।।

ये माना कि दाता तुम सब जहाँ के, मगर कैसे फैलाऊँ दामन में आके,
जो अब तक दिया है, वही कम नहीं है, मैं उसे ही चुकाने के काविल नहीं हूँ ॥

(2)

भूल मत जाना रे, ऐहसान दयान्द के–2
ब्रह्मचर्य धार कर, बुद्धि का विस्तार कर ।
वेद का अपनाना ऐहसान दयानन्द के ॥1॥
भारत में अंधेरे का, अविद्या का ढेर था,
रोशनी फैलाना–ऐहसान दयानन्द के ॥2॥
बच्चेपन की शादियाँ, होती थी बरबादियाँ,
यह दोष बतलाना–ऐहसान दयानन्द के ॥3॥
वाल विधवा रोवें थी, मुस्मां होवे थी,
पुनर्विवाह करवाना–ऐहसान दयानन्द के ॥4॥
आर्यों का राज्य था, माँ के शिर पर ताज था,
स्वराज्य का दिलाना–ऐहसान दयानन्द के ॥5॥

(21)

ओं का जाप कर दूर संताप कर, तज झमेला, प्यारे दुनियाँ है दो दिन का लेला ॥

घूम लाखों योनी में आया, आज दुर्लभ मनुष्य तन यह पाया ।
मूल्य इसका समझ ओं का नाम भज, हे सहेला–प्यारे—
कोड़ी कोड़ी जो माया है जोड़ी, आज बन बैठा लक्खी करोड़ी,
अन्त में कर मैले हाथ खाली चले, संग न धेला–प्यारे—
मौत आयेगी जिस दिन बुलाने, ठाठ सारे पड़े रहें सिराने ।
बैठे देखगें सब हँस निकलेगा जब, यह अकेला–प्यारे—
जिसको कहता है तू मेरा, बता हैं कौन दुनियाँ में तेरा ।
पूर्ण विश्वास कर, ओं की आश कर, ये है बेला–प्यारे—

(22)

बिगड़ी बनाने वाले बिगड़ी बना दो, नैय्या हमारी पार लगादो ।
चारों ही ओर अब तो छाया हैं अंधेरा, ऐसे समय में कोई रक्षक ना मेरा,

ज्योति स्वरूप प्रभु अंधेरा मिटादो–नैय्या —
भोगों का दास बन जीवन गुजारे, पापों से सोते हुए आये तेरे द्वारे।
शरण में लो, चाहे मुझे सजा दो—नैय्या——
आगे का शेष जीवन बन जाये मेरा, जब भी मैं ध्याऊँ, दर्शन हो तेरा,
कष्टों में हँसता रहूँ ऐसी दुआ दो—नैय्या—
माँता-पिता और सखा नहीं मेरा, छूटेंगें सारे साथी, सदा संग तेरा,
अर्पित हूँ मेरा जीवन, दुःखों से बचा दो——नैय्या——

(23)

अजन्मा है अमर आत्मा

व्यर्थ चिन्तित हो रहे हो, व्यर्थ डर कर रो रहे हो,
अजन्मा है अमर आत्मा, भय में जीवन खो रहे हो ।।
जो हुआ अच्छा हुआ, जो हो रहा है अच्छा ही है,
होगा जो अच्छा ही होगा, यह नियम सच्चा ही है ।
गर भूला दो वोझ कल का, आज तुम क्यों ढो रहे हो ।।1।।
हुई भूली भूलों का फिर, आज पश्चाप क्यों ?
कल क्या होगा, है अनिश्चित, आज फिर सन्ताप क्यों ?
जुट पड़ो कर्त्तव्य में तुम, बाट किसकी जो रहे हो ।।2।।
क्या गया तुम रो पड़े, लाये क्या थे खो दिया ?
है, हुआ क्या नष्ट तुमने, ऐसा क्या था खो दिया ?
व्यर्थ ग्लानि से भरा मन, आँसुओं से धो रहे हो ।।3।।
ले के खाली हाथ आये, जो लिया यही से लिया,
जो लिया नसीब से, उसको, जो दिया यहीं कर दिया।
जान कर दस्तूर जग का, क्यों परेशां हो रहे हो ।।4।।
जो तुम्हारा आज है, कल वो ही था किसी और का,
होगा परसों जाने किसका, यह नियम सरकार का
मान हो अपना समझना, दुःखों को क्यों सजो रहे हो ।।5।।

जिसको तुम मृत्यु समझते, वही जीवन तुम्हारा,
है नियम जग का वदलना, क्या पराया क्या तुम्हारा
एक क्षण में कंगाल हो, क्षणभर में धन से मोह रहे हो ॥6॥
मेरा तेरा छोटा वड़ा, भेद यह मन से हटा दो,
सब तुम्हारे तुम सभी के, फासले मन से हटाओ।
कितने जन्मों तक करोगे, पाप कर तुम जो रहे हो ॥7॥
है किराये का मकां, ना तुम हो इसके, ना तुम्हरा,
पांच तत्त्वों से बना घर, देह कुछ दिन का सहारा,
इस मकां में हो मुसाफिर, किस कदर यों सो रहे हो ॥8॥
उठो ! अपने आपको, भगवान को अर्पित करो,
अपनी चिंता शोक और भय, सब उसे अर्पित करो,
हैं वही उत्तम सहारा, क्यूँ सहारा खो रहे हो ॥9॥
अव करो जो भी करो, अर्पण करो भगवान को,
सदा करदो समर्पण, त्यागकर अभिमान को,
मुक्ति का आनन्द अनुपम, सर्वदा क्यों खो रहे हो ॥10॥

(24)

क्या मतलब

निराकार चेतन की हम, जड़ मूर्ति बनावें क्या मतलब ?
भूख, प्यास से रहित प्रभु है, भोग लगावें क्या मतलब।
फल पत्रो में रमा जो उस पर, पुष्प चढ़ावें क्या मतलब,
जिसका नहीं शरीर उसे हम, वस्त्र पहनावें क्या मतलव।
जड़ पदार्थों की पूजा से, जड़ हो जवें क्या मतलव,
उल्टे मार्ग पर चल कर हम दुःख उठावें क्या मतलब।

(25) विनय

विनय जगदीश है तुमसे, हमें दुःखों से मुक्त कर दे,
तेरी महिमा निराली है, तू पल में क्या से क्या कर दे।
सुखादे तू समुद्रों को, भरे तो पलक में भर दे।
बनादे शाह को बन्दी, छात्र कंगाल पर धर दे॥

खजाने भरे हों जिनके, भिखारी उनको तू कर दे।
भूखे फिर भिखारी को, खजाने से उनको तू भर दे ॥
हकूमत जिनकी दुनियाँ में, उन्हें आधीन तू कर दे।
हमारे जैसे दीनों को, प्रभु स्वाधीन तू कर दे ॥
तेरी महिमा अगम इतनी, गुणी कोई गा नहीं सकता।
ऋषियों और मुनियों भी, तेरी कोई थाह पा नहीं सकता ॥
तेरे दर्शन जो भव भंजन, प्रभु हमको दिखादे तू।
तू अपना नाम हम सभी को, जपना सिखादे तू ॥

(26) समर्पण

जबस्वामी को पतवार दई, फिर नाव की चिन्ता क्यों करिये,
जब उसको रक्षक मान लिया, तो बचाव की चिंता क्यों करिये।
मरहम जबउसके हाथों में, तब घाव की चिन्ता क्यों करिये।
जब गोद में उसकी बैठ गये, तब चाह की चिंता क्यों करिये ॥

(27)

जब सोप दिया सब भार तुम्हें,
फिर तारों या मारो हमें फिर क्या ?
अब आप ही प्यारे विचार करो,
इस दीन दुःखी को सहारा है क्या ?
मझधार में लाके डुबाओं हमें,
चाहे पार लगाओ किनारे पर ला,
हम तेरे हैं तेरे रहेंगे सदा,
अब और किसी को निहारेंगे क्या ?

(28)

ओं नाम के साबुन से जो, मन की मैल मिटायेगा,
निर्मल मन के शीशे में, भगवान के दर्शन पायेगा
रोम-रोम में रमा हुआ, है कोई तुम से दूर नहीं,
देख सके न उन आँखों से, जिन आँखों में नूर नहीं।
देखेगा जो मन मन्दिर में, ज्ञान की ज्योति जगायेगा-निर्मल,

राग द्वेष ईर्ष्या को त्यागो, हर एक से तुम प्यार करो
घर आये मेहमान की सेवा से, तुम न कभी इन्कार करो,
पता नहीं किस रूप में आकर, नारायण मिल जायेगा-निर्मल-
यह शरीर प्रभु कृपा से पाया, जिसका तुझे अभिमान है,
गायत्री का सिमरण करले, जिसमें तुझे आराम है।
गायत्री एक महा मंत्र है, काम तेरे वो आएगा-निर्मल-
जिस माया का मान तुझे हैं, यहाँ धरी रह जानी है,
सिकन्दर जैसे यहाँ हुए, कितनी ही सुनी कहानी है।
मुट्ठी बाँधे आया जग में, हाथ पसारे जाएगा-निर्मल

29 तर्ज (रघुपति राघव राजा-राम)

परमेश्वर का कर गुण-गान, वो ही है रक्षक भगवान।
ओं ओं का जाप किया कर, गायत्री का पाठ किया कर,
हो जावे तेरा कल्याण, परमेश्वर का कर गुण गान ॥
सत्संग में नित जाया कर, गीत प्रभु के गाया कर,
भक्ति रस का कर ले पान, परमेश्वर का कर गुण गान ॥ 2 ॥
सेवा अपना लक्ष बना, दीन दुःखों के कष्ट मिटा,
माया का मत कर अभिमान, परमेश्वर का कर गुण गान ॥ 3 ॥
नन्दलाल तू होश में आ, वेदों का मार्ग अपना,
अपना आप जरा पहिचान, परमेश्वर का कर गुण गान ॥ 4 ॥

पादपश्चिमोत्तानासन

विधि—जमीन पर आसन बिछाकर पैर लबे करके बैठ जाओ। फिर दोनों हाथों से दोनों पैरों के अंगूठे पकड़ कर मुँह बन्द रखकर नाक से श्वांस बाहर निकालते हुए, आगे झुकते हुए सिर को दोनों घुटनों से मिलाने का प्रयास करें। घूटने जमीन पर सीधे रहें। आरम्भ में घुटने जमीन पर न टिकें तो कोई हर्ज नहीं।

लाभ—इस आसन से नाड़ियों की शुद्धि होती है और शरीर की बिमारियाँ दूर होती हैं। बदहजमी, कब्जी, पेट के सभी रोग, सर्दी जुकाम, कफ गिरना, कमर का दर्द, सफेद कोढ़, पेशाब की बिमारियाँ,

स्वप्नदोष, वीर्य विकार, अपेन्डिक्स, बालों की सूजन, पीलिया, अनिद्रा दमा, गर्भाशय, के रोग, मासिक धर्म की अनियमतता, नपुंसकता, रक्त विकार, ठिगना पन आदि अन्य प्रकार की बिमारियाँ यह आसन करने से दूर होती हैं। शुरू में यह आसन ½ मिनट से शुरु करके प्रतिदिन थोड़ा बढ़ाते हुए 15 मिनट तक कर सकते हैं। इस आसन से शरीर का कद लम्बा होता है। ब्रह्मचर्य पालने वालों के लिए यह राम वाण औषधि है। अतः प्रत्येक को प्रतिदिन दोनों समय करना चाहिए।

जीवन और मृत्यु

जो मृत्यु को जीतते हैं	जिन्हें मृत्यु जीतती है
1. सदाचारी की दीर्घायु होती है।	1. दुराचारी की आयु घट जाती है।
2. आस्तिक और परिश्रमी मनुष्य की आयु लंबी होती है।	2. नास्तिक और आलसी की आयु क्षीण हो जाती है।
3. प्रतिदिन सन्ध्या और प्राणायाम करने से आयु बढती है।	3. धर्म की मर्यादा भंग करने वालों की आयु अल्प होती है।
4. मल-मूत्र त्यागने और रास्ता चलने के बाद तथा स्वाध्याय और भोजन करने से पहिले पैर धो लेने चाहिए।	4. जो ऐसा नहीं करते, वे शीघ्र बिमार हो जाते हैं।
5. मल-मूत्र का त्याग दिन में उत्तर की तरफ मुँह करके और रात को दक्षिण की ओर मुँह करके करना चाहिए।	5. जो खड़ा होकर तथा सुयं अग्नि पीपल का वृक्ष, धार्मिक स्थानों के पास मल मूत्र का त्याग करते है, वे रोगी हो जाते हैं उन्हें मौत जल्दी आती है।
6. सायंकाल में न सोये। सूर्योदय तक भी न सोये।	6. जो इन दोनों समय सोता हैं वह आलसी हो जाता है।
7. पूर्व और दक्षिण की ओर सिर करके सोना चाहिए।	7. जो इसका उल्टा करते हैं उनकी आयु क्षीण हो जाती है।
8. सादगी जीवन है।	8. सजावट, बनावट मृत्यु।

9. ब्रह्मचर्य जीवन है।	9. व्यभिचार मृत्यु है।
10. सन्तोष जीवन है।	10. लोभ मृत्यु है।
11. वीरता जीवन है।	11. कायरता मृत्यु है।
12. अहिंसा जीवन है।	12. हिंसा मृत्यु है।

ॐ

आत्मिक विकास के साधन

आत्मिक उन्नति के लिए नीचे जो बातें लिखी गई हैं उनमें से अधिक से अधिक को पालन करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। इन प्रश्नों को एक पृथक नोट बुक में लिख लेना चाहिए और प्रतिमाह इनके अनुसार अपना आत्म परीक्षण करना चाहिए। वर्ष के उपरान्त देखना चाहिए कि मैंने कितनी प्रगति की है।

(1) प्रातःकाल गर्मियों में 4 बजे तथा सर्दियों में 5 बजे उठना।
(2) पाँच बार गायत्री मंत्र का बोलना या प्रातःकालीन मंत्रों का पाठ
(3) माता, पिता गुरुजनों व अपने से बड़ों को श्रद्धा से नमस्ते करना।
(4) उषा पान करना रात के रखे हुए ताम्र पात्र के जल को पीना।
(5) प्रति दिन स्नान करना। (6) योगासनों का अभ्यास करना।
(7) आधा घण्टे घूमना। (8) दोनों समय सन्ध्या करना।
(9) वेद या वेदानुकूल धार्मिक पुस्तक का ½ घण्टे स्वाध्याय।
(10) चोटी और यज्ञोपवीत्र रखना। (11) दैनिक या साप्ताहिक यज्ञ करना। (12) धूम्रपान न करना। (13) भांग, गांजा व शराब आदि नशीली चीजों का सेवन न करना। (14) अपशब्दों (गाली या कटु वचन) का प्रयोग न करना।
15. अश्लील (गन्दा) साहित्य न पढ़ना।
16. अश्लील दृश्य (नाटक व सिनेमा) न देखना।
17. अश्लील गाने न गाना और न सुनना।
18. अण्डा, मांस आदि का सेवन न करना।
19. सप्ताह में एक दिन का उपवास।
20. आज का काम आज करना।

21. सत्य बोलना ।
22. चोरी न करना ।
23. ब्रह्मचर्य का पालन करना ।
24. चुगली न करना ।
25. प्रतिदिन एक घण्टा ध्यान करना ।

ईश्वरीय नयाय के अनुठे तरीके

बरसात के दिन थे । सात मुसाफिर पैदल अपने गाँव से दूसरे गाँव जा रहे थे। रास्ते में बूँदें पड़ने लगी। सभी एक बड़े बरगद के पेड़ के नीचे वर्षा से बचने के लिए चले गये। अब बिजली बार-बार तेजी से कड़कने लगी तथा चमकने लगी । उन लोगों ने आपस में विचार किया कि हम में कोई पापी है, यह बिजली उस पर पड़ना चाहती है। अतः बरी-बारी से एक एक आदमी सामने जो दो सौ गज की दूरी पर कीकर का वृक्ष है, उसके हाथ लगाकर आयेगा । पहिले कौन जावे, इस बात पर कोई तैयार नहीं। अन्त में एक बूजुर्ग ने कहा पहिले मैं जाता हूँ। वह डरता हुआ, मन में भगवान का स्मरण करता हुआ गया और थोड़ी ही देर में वृक्ष के हाथ लग ाकर वापिस आ गया। इस प्रकार से दूसरा, तीसरा, चौथा पाँचवा और छठा आदमी भी उस कीकर के वृक्ष के हाथ लगाकर वापिस आ गया। अब जो सातवां आदमी था, वह बहुत डर गया। उसने सोचा कि ये तो सब बच गये, अब तू ही मरेगा। वह गिड़गिड़ाने लगा लेकिन उन छःहों आदमियों ने उसको धक्का देकर वहाँ से निकाल दिया। वह परमात्मा का स्मरण करता हुआ, जैसे ही कीकर के वृक्ष के पास पहुँचा तो बिजली तेजी से चमकी और कड़क कर उस बरगद के वृक्ष पर गिरी। वे छःहों आदमी मारे गये। ईश्वर को उस एक को बचाना था।

(2) एक जमींदार—के पहली पत्नि से एक पुत्र था। जमीदार की दूसरी पत्नि उहसे बहुत नाराज थी। एक दिन उसने अपने पति से कहा कि इस बालक को मार दो, वरना मैं यहाँ नहीं रहूँगी। जमीदार उसके कहने में आ गया। लड़का विद्यालय में पढ़ता था। जमीदार ने अपने नौकर से कहा कि आज जब वह लड़का दोपहर को भोजन करने आये, तो उसे घर के भीतर ही मार देना। नौकर तैयार हो

गया। लड़का दोपहर को भोजन करने घर आया और जब वह बैठ गया तो नौकर ने उहके हाथ पैर वांध दिये और मुंह में कपड़ा ठूंस दिया ताकि शोर न मचा सके। अब नौकर ने गडांसा लेकर जैसे ही मारने चला कि पीछे एक काले सर्प ने आकर डस लिया और वह वेहोश होकर गिर पड़ा। जब काफी देर हो गई तो जमींदार भी पास के खेत से घर आया और जब उसने नौकर को पड़े देखा तो स्वयं गुस्से में भर कर उस वालक को मारने चला। उसी सर्प ने जो वहीं छिपा हुआ था, उस जमीदार को भी काट लिया और जमीदार भी वेहोश होकर गिर पड़ा। काफी देर तक जब लड़का विद्यालय नहीं गया तो गुरुजी स्वयं उस वालक के घर गये और देखा कि ये दो मरे पड़े हैं और बालक बंधा हुआ पड़ा है। अध्यापक के आते ही सांप वहाँ से चला गया। अध्यापक ने बालक के हाथ पैर खोले, मुंह से कपड़ा निकाला। वालक वहुत डरा हुआ था। अध्यापक उसे अपने साथ विद्यालय ले गये। थोड़ी ही देर में यह बात गाँव भर में फैल गई। सभी ईश्वर की रक्षा करने की विधि को देखकर आश्चर्य करने लगे।

(3) सहारनपुर से रोडवेज वस दिल्ली की ओर जा रही थी। रास्ते में जंगल में किसी कारण वस रुकी। उसी समय मुशाफिरों ने देखा कि एक खरगोश का पीछा कुत्ता कर रहा है। खरगोश जान वचाने के लिये एक झाड़ी में घुस गया। वस में बैठे लोगों ने कहा कि ईश्वर ने वचा लिया। यह वात उस वस के ड्राईवर को अच्छी नहीं लगी और वह स्वयं उस झाडी के पास पहुंचा और झाड़ी से खरगोश को पकड़ लाया। उसने कहा मैं देखता हूं तुम्हारा भगवान इसे कैसे वचाता है। उसने अपना लम्वा चाकू निकाला और खरगोश के पिछले दो पैरों को हाथ से पकड़ कर, दूसरे हाथ से जल्दी में चाकू मारा। लेकिन—ईश्वर जिसकी रक्षा करता है, उसे कौन मार सकता है। ऐसा ही हुआ—जल्दी में खरगोश तो हाथ से छूट गया ओर खुद का हाथ कट गया। आधा हाथ अलग हो गया। उसे बस में बैठाया लेकिन देहली आने तक इतना खून निकल चुका था कि वह मर गया। अत: ईश्वर की शक्ति को किसी को भी चैलेन्ज नहीं करना चाहिए।

(4) एक नवजवान अफसर अपनी बीबी के साथ सड़क के किनारे बनी कोठी में ऊपर की मंजिल पर सामने छज्छे पर बैठें थे। एक भिखारी आया और हाथ जोड़कर कहने लगा—बाबूजी भूखा हूँ। कोई बासी टुकड़ा हो तो देदो। बाबूजी की स्त्री ने मना कर दिया। भिखारी फिर भी मांगता ही रहा। आखिर में वह बाबू गुस्से में आकर नीचे आया और कहा कि यहाँ कुछ नहीं हैं। भिखारी ने कहा कि कुछ तो दे ही दो। जब बार बार कहा तो बाबूजी ने कहा—हाथ फैलाओ। जैसे ही भिखारी ने हाथ फैलाया कि बाबूजी ने उसके हाथ पर थूक दिया। भिखारी ने कहा कि आपने यह अच्छा नही किया। इस पर बाबूजी को क्रोध आया धक्का देकर कोठी से बाहर निकाल दिया। आप स्वयं तेजी से लकड़ी से बनी घुमावदार सीढी से ऊपर चढ़ने लगा। जैसे ही ऊपर की तरफ चढ़ा, पैर फिसला और नीचे आ गिरा। एक पैर की हड्डी टूट गई। यह दुष्परिणाम होता हैं भगवान के भिखारियों का अपमान करने पर।

आनंद की खोज

एक बुढिया सिलाई का कार्य करती थी। एक दिन रात को उसकी सुई गिर गई। घर में मन्दप्रकाश था अतः बाहर सड़क पर आकर बिजली के प्रकाश में सूई खोजने लगी। उधर से गुजरने वालों ने बुढिया से पूछा माताजी क्या खो गई है। उसने कहा सूई खो गई है। काफी देर तलाश करने पर भी जब सूई न मिली तो एक आदमी ने पूछा—कि माताजीं वह स्थान बताओ जहाँ सूई गिरी थी। तो बुढिया से कहा कि सुई तो घर के अन्दर गिरी थी। चूँकि घर में मन्द प्रकाश था—इसलिये बाहर ढूँढ रही हूँ। इस पर लोगों ने कहा कि बाहर सूई कभी नहीं मिलेगी, जहाँ खोई है वहीं तलाश करो। हम सब भी शरीर से बाहर संसार में आनन्द की की तलाश करते हैं किन्तु आनन्द का स्रोत ईश्वर हृदय में है, वहीं पर ध्यान लगाकर ढूंढने से मिल सकता हैं।

संगति का असर

एक बार एक घुड़सवार अपने गाँव से किसी दूर के गाँव जा रहा

था। रास्ते में उसे एक आश्रम दिखाई दिया। उसने सोचा कि यहाँ कुछ देर ठहरूँगा और घोड़े को पानी पिलाऊँगा। लेकिन जैसे ही वह उस आश्रम के नजदीक पहुँचा तो पिंजरे में बैठा एक तोता बोला—इसे पकड़ लो, इसका घोड़ा छीन लो, देखो कहीं भाग न जावे। इन शब्दों को सुन कर घुड़सवार डरा और तेजी से आगे निकल गया। पाँच मील चलने पर उसे एक दूसरा आश्रम दिखाई पड़ा। जब वह इस आश्रम में पहुँचा तो यहाँ भी एक तोता पिंजरे में था। उसने घुड़सवार को देखकर कहा—पधारिये, आपका स्वागत है। विश्राम कीजिए, जल पान कीजिए। घुड़सवार वहाँ रुक गया और आश्रम के स्वामी जी पूछा कि पिछले आश्रम का तोता तो पकड़ने और लूटने की बात कह रहा था, तथा आपके आश्रम का तोता स्वागत और विश्राम की बात कह रहा है। इस बात को सुन कर वह तोता बोला—

अहं मुनीनां वचनं शृणोमि, शृणोति अयं यनवस्य वाक्यम्
न चास्य दोषो, न च में गुणों वा, संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति।

अर्थ— मैं प्रतिदिन मुनियों की संगत के कारण श्रेष्ठ वचन सुनता हूँ और वह कुसंगति के कारण डाकुओं के शब्द सुनता है। इसमें न उसका कोई दोष है और न मेरा गुण है। संगति से गुण दोष पैदा होते हैं। इसलिये सदैव बुरी संगति से बच कर अच्छे पुरुषों की संगति करनी चाहिए।

वाणी के अनुसार कार्य

एक चिड़िमार जंगल में जाल फैलाकर प्रतिदिन बहुत से कबूतरों को पकड़ ले जाता था और उन्हें शहर में बेच आता है। एक दिन एक महात्मा उधर से गुजरा। उसने चिड़ीमार से ऐसा कार्य न करने को कहा, किन्तु चिड़िमार ने कहा कि मेरा तो परिवार का निर्वाह इसी से होता है। अब महात्मा ने चिड़िमार के जाने के पश्चात् कबूतरों को पढ़ाना शुरू किया। उसने कहा चिड़िमार आयेगा, दाना डालेगा, जाल बिछायेगा, फंस मत जाना कई दिन तक ऐसा बार-बार कहा तो कबूतर भी ऐसा ही ही बोलने लगे। अब महात्मा को विश्वास हो गया कि ये जाल में नहीं फंसेंगे। कुछ दिनों बाद वह शिकारी फिर कबूतर पकड़ने वहाँ पहुँचा।

उसको देखते ही कबूतरों ने कहना शुरू कर दिया कि चिड़िमार आयेगा, दाना डालेगा, जाल बिछायेगा, नहीं फँसेगे, नहीं फँसेगे। उनकी इस प्रकार की आवाज सुनकर चिड़िमार उदास हो गया कि ये तो सब पढ़ लिख गये हैं। फिर भी थोड़ी देर बाद उसने दाना डाला, जाल बिछाया और आप थोड़ी दूर पर बैठ गया। उसने देखा कि कबूतर बोलते जा रहे हैं और जाल से भी फँसते जा रहे हैं। उसने कबूतरों को फिर पकड़ा और ले गया। इन कबूतरों ने वाणी से शब्दों को रट लिया किन्तु उसके अनुसार कार्य नहीं किया। हम में भी बहुत से ऐसे ही हैं जो शास्त्रों के उपदेशों को कण्ठस्थ कर लेते हैं और शास्त्रों में दिये गये उपदेशों को जीवन में नहीं काम में लेते। इसलिये शास्त्र पढ़ते हुए भी दुःख पाते हैं।

आत्मा की आवाज

एक महात्मा किसी शहर में सड़क के सहारे बने एक मकान में सत्संग कर रहे थे। दीवार पर बड़ी घड़ी लगी हुई थी जिसकी टक-टक की आवाज सुनाई पड़ती थी। कुछ समय बाद उधर से बैण्ड बाजे बजाती हुई एक बरात निकली। जब घड़ी की आवाज सुनाई नहीं पड़ी तो एक भक्त ने कहा, स्वामी जी घड़ी बन्द हो गई है क्योंकि इसकी आवाज सुनाई नही पड़ती। इस पर महात्मा ने कहा–कि घड़ी बन्द नहीं हुई है किन्तु बाहर की आवाज और शोर इतना अधिक है कि अब इसकी आवाज दब गई है और सुनाई नहीं पड़ रही है। इसी प्रकार से हमारे कान रात-दिन बाहर की तेज आवाज सुनते हैं और आत्मा की धीमि आवाज सुनाई नहीं पड़ती। यदि हमें आत्मा की आवाज सुनती है तो बाहर की आवाजों को बन्द करना पड़ेगा।

ईश्वर विश्वास का फल

एक बार एक जहाज समुद्र में जा रहा था। समुद्र के बीच में पहुँचे तो तूफान आ गया जहाज बुरी तरह से हिलने लगा। जहाज के कप्तान ने खतरे की घण्टी बजा दी। जहाज में सवार सैकड़ों यात्री अब घबरा गये और रोने, चिल्लाने लगे। एक ईश्वर भक्त अपने केबिन में शांति से बैठे

था किन्तु उसका दस वर्ष का बालक भी बाहर के शोर को सुनकर रोने लगा। उस भक्त ने बालक बहुत समझाया किन्तु वह बालक रोता ही रहा। अन्त में उस भक्त ने अपने बालक को नीचे फर्श पर पटक दिया और अपना छुरा निकाल कर उसे मारने को तैयार हुआ। अब वह बालक हँसने लगा। पिता ने पूछा कि पहिले तो रो रहा था और अब क्यों हँसने लगा है। इस पर पुत्र ने कहा कि मुझे विश्वास है कि छुरा मेरे बाप के हाथ में है और बाप कभी अपने पुत्र को मारता नहीं है इसलिए हँस रहा हूँ। इस बात को सुनकर पिता ने कहा कि जैसे तुम्हें मुझ पर विश्वास हैं, इससे भी अधिक मुझे परमात्मा पर पूरा विश्वास है वह हमें डूबने नहीं देगा। और हुआ भी ऐसा ही। थोड़ी ही देर में तूफान शान्त हो गया और जहाज पहिले की तरह समुद्र में चलने लगा। जिन्हें ईश्वर पर पूर्ण विश्वास होता है वे हर परिस्थिति प्रसन्न रहते हैं।

जीना सीखो

एक नाविक आगरा कालेज के कुछ छात्रों को रात में यमुना की सैर कराने ले गया। थोड़ी दूर जाने पर छात्रों ने नाविक से पूछा कि गणित पढा हैं तो नाविक ने कहा नहीं। इस पर छात्रों ने कहा तुम्हारी $\frac{1}{4}$ आयु बेकार हो गई। फिर पूछा-बनस्पति शास्त्र पढा है तो नाविक ने उत्तर दिया-नहीं। इस पर छात्रों ने कहा तेरी आधी उम्र बेकार गई। थोड़ी देर बाद आकाश को देख कर पूछा कि खगोल शास्त्र पढा है, इस पर भी नाविक ने कहा कि बाबूजी मैंने कोई शास्त्र नहीं पढा तो छात्रों ने कहा तेरी $\frac{3}{4}$ उम्र बेकार हो गई। कुछ दूर जाने पर नौका भँवर में पड़ गई और कहा कि नाव डूबेगी, तैरना जानते हो ? छात्रों ने कहा नहीं। इस पर नाविक ने कहा मेरी तो $\frac{3}{4}$ उम्र बेकार गई है लेकिन तुम्हारी तो सारी ही बेकार जायगी। इस दृष्टांत से शिक्षा मिलती है जो केवल भौतिक विद्या: पढते हैं वे चाहे कितने ही विद्वान और धनवान हो जावे, आत्मा की अमरता को नहीं जान सकते और सदैव मौत से डरते हैं तथा जो आध्यात्मिक विद्या पढते हैं और उसके अनुसार चलते हैं वे संसार सागर को आसानी से पार कर जाते हैं।

सब में समभाव देखना

एक सेठजी बड़े धर्मात्मा, उदार और ईश्वर भक्त थे। उनके पास एक गुलाम लड़का रहता था। सेठजी चाहते थे कि जैसा मैं खाता पीता हूँ वैसा ही इस नौकर को मिले। लेकिन सेठजी की धर्म पत्नी उसे वासी सूखा वचा हुआ भोजन देती थी। इससे सेठ को दुःख होता था। आखिर सेठ ने एक उपाय सोचा। वह अपनी थाली में खाते समय अधिक सामान रखा लेता था और फिर आधा खाकर छोड़ देता था। अब सेठानी ने सोचा कि इसे वाहर फैंकने से तो अच्छा है इस नौकर को ही दे दिया जाय। इस प्रकार सेठजी सदैव करने लगे। एक दिन सेठ की थाली में खरवूजा रख दिया। सेठ ने चखा तो कड़ा लगा। विलकुल नहीं खाया। सेठ के बाद उस थाली को नौकर को सेठानी ने दी। नौकर ने उस कड़े खरवूजे को खा लिया। खाने के बाद सेठ ने नौकर बुलाया और पूछा कि तुझे वह खरवूजा कड़ा नहीं लगा। इस पर नौकर ने कहा—मालिक रोज-रोज तो आप मीठा खाने को देते हो, यदि एक दिन कड़ा मिल गया तो क्या बुराई है। ठीक ही कहा है—

चाहे मोती मिलें, चाहे आँसू मिले,
मुस्कराता हुआ अपना दामन बढ़ा।
देने वाले की तोहीन हो जायगी,
मुख से शिकवा जो तेरे अगर हो गया ॥

इसलिये हमें सभी परिस्थतियों में प्रसन्न रहना चाहिए।

अन्तःकरण निर्मल करो

देहात के एक कुएं में कुत्ते के दो बच्चे गिर गये और मर गये। गांव वालों को पता चला तो गाँव के पंडित जी के पास पहुँचे। पंडित जी ने कहा—सो दो सौ वाल्टी पानी निकाल कर गंगाजल और तुलसी डाल देना। गांव वालों से ऐसा हीं करके फिर पंडित जी के पास गये कि कोई कमी तो नहीं रह गई। पंडित जी ने पूछा, पानी निकाल दिया और गंगाजल भी डाल दिया, पर यह तो बताओ वे पिल्ले भी

निकाले या नहीं । गाँव वालों ने कहा, नहीं निकाले हैं, तो पंडित जी ने कहा, कोई लाभ नहीं हुआ, पहिले पिल्ले निकालो । इसी प्रकार से मानव जब तक विषय वासना रूपी पिल्ले अन्तःकरण से नहीं निकालेगा । तब तक भक्ति रूपी गंगाजल और नाम जप रूपी तुलसी का प्रभाव नहीं पड़ेगा । अतः अन्तःकरण को विषय वासना से खाली करो और फिर भक्ति में मन को लगाओ ।

भजन कब करोगे

अमावस्या के दिन समुद्र स्नान का बड़ा महत्त्व है । उस दिन समुद्र स्नान से पुण्य की प्राप्ति होती है । एक व्यक्ति उस दिन समुद्र स्नान करने गया किन्तु स्नान करने के बजाय वह किनारे पर बैठा रहा । किसी ने पूछा "स्नान करने आये हो तो क्यों बैठे हो, स्नान कब करोगे ?" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, इस समय समुद्र अशान्त है । इसमें ऊँची-ऊँची लहरे उठ रही हैं, लहरे बन्द होंगी और समुद्र शान्त होगा, तभी स्नान करूँगा ।

पूछने वाले को हँसी आई । वह बोला, भले आदमी समुद्र की लहरें क्या कभी रूकने वाली है । ये तो आती ही रहेंगी । समुद्र स्नान तो लहरों के थपेड़ें खाकर ही करना पड़ता है, नहीं तो स्नान कभी नहीं हो सकता । यह हम सब की कथा है । हम विचार करते है कि सभी प्रकार की अनुकूलताएँ होंगी, तभी परमात्मा का ध्यान, भजन करूँगा । किन्तु सभी प्रकार की अनुकूलता जीवन में किसी को कभी नहीं मिली । संसार समुद्र के समान है, जिसमें बाधा रूपी तरंगें तो हमेशा उठती ही रहेगी । एक परेशानी दूर होते ही दूसरी परेशानी उपस्थित होगी ही । जिस प्रकार वह व्यक्ति बिना स्नान किये रह गया, उसी प्रकार सभी प्रकार की अनुकूलता की बाट देखने वाले व्यक्ति से ईश्वर भजन नहीं हो सकता ।

भजन के लिए उपयुक्त समय की राह मत देखिये । हर क्षण भजन के लिए अनुकुल है । कोई परेशानी नहीं रहेगी, तब भजन करूँगा, ऐसा सोचना निरी मूर्खता है ।

निभालो

एक गाँव में एक सेठ, उसकी पत्नि, पुत्र एवं पुत्र वधु रहते थे। सेठ की पत्नि का व्यवहार अपनी पुत्र वधु के साथ अच्छा नहीं था। वह सदैव उसे कठोर शब्दों से तथा अपशब्दों (गालियों) से धमकाया करती थी। बेचारी पुत्रवधु बड़ी दु:खी हो गई। वह सदैव निराश और उदास रहने लगी। एक वार एक साधु भिक्षाटन के लिए सेठ की हवेली पर आया। उस समय सेठानी शौचालय गई हुई थी। सेठ की पुत्रवधु ने साधु को भिक्षा दी और प्रार्थना की, कि आप मेरी सासू जी को समझा जावें, यह नागिन की तरह मुझे सदैव डसती रहती है।

महात्मा ने कहा कि उसे तो मैं फिर समझाऊँगा, लेकिन एक बात तू मेरी मान ले। साधू ने कहा कि जब कभी तेरी सास भला बुरा कहे तो तू नम्रता से हाथ जोड़ कर कहना, मुझे निभालो, मैं आपकी ही तो हूँ। साधू ऐसा कह कर चले गये। दूसरे ही दिन से जब कभी उसकी सास उसे–भला बुरा कहती तो वह हाथ जोड़ कर नम्रता से कहती कि मुझे निभालो, मैं आपकी ही हूँ। पुत्रवधु के वार-वार ऐसा कहने से सेठानी (सास) का हृदय पलटा। अब वह भी उसे प्रेम से बोलने लगी। दो माह बाद वहीं साधू फिर भिक्षा के लिए आया तो सास ने कहा—महाराज! आपने हमारा घर स्वर्ग बना दिया है। साधू ने कहा—आप भी अब सदैव ऐसा ही नम्रता का व्यवहार करती रहें।

धन का गर्व

कोई धनवान पुरुष अपने मित्र के साथ घूमने जा रहा था रास्ते में एक कष्ट में पड़े कंगाल को देखकर, मित्र का हाथ दबा कर व्यंगपूर्वक हँस पड़े। समीप से ही कोई विद्वान जा रहा था। धनी का यह व्यवहार अनुचित लगा और कहा–आपद्गतं हससि किं द्रविणान्ध मूढ़, लक्ष्मी स्थिरा न भवतीह किमत्र चित्रम्। किं त्वं न पश्यसि घटाञ्जलं-यन्त्र चक्रे, रिक्ता भवन्ति भरिता, भरिताश्च रिक्ता। अरे धन के मद से अन्धे बने मूर्ख! आपत्ति में पड़े व्यक्ति को देखकर हँसता है। किन्तु

लक्ष्मी कहीं स्थिर नहीं रहती, अत: इसमें किसी के कंगाल होने में विचित्र बात क्या है। क्या तू रहँट की ओर नहीं देखता कि उसमें लगी भरी डोलियाँ खाली हो जाती हैं और खाली हुई फिर भर जाती है। यह बात सुनकर धनवान लज्जित हो गया।

संकट में ईश्वरीय सहायता--

इंग्लैण्ड में एक्सटर जेल में जानली नाम के व्यक्ति को हत्या के आरोप में फाँसी की सजा सुनादी गई। निश्चित तारीख को जानली को फाँसी के स्थान पर लाया गया। डाक्टर ने शरीर की जाँच की। पादरी ने प्रार्थना की। जल्लाद ने फाँसी का फन्दा खींचा किन्तु तख्ता नहीं खिचा। फिर तख्ते की जाच की और फाँसी का फन्दा खींचा, लेकिन फिर भी नहीं खिचा। तीसरी बार भी ऐसा ही हुआ। जज ने आश्चर्य किया और कैदी को छुड़वा दिया। बाहर खड़े पत्रकारों ने जब जानली से पूछा, तो उसने कहा वह निर्दोष था। पैसों के अभाव मे वह साक्षी नहीं दिला सका। इस प्रकार ईश्वर निर्दोष व्यक्तियों की रक्षा करता है।

आर्य समाज के दस नियम

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

2. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामि, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करने योग्य है।

3. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिए।

6. संसार का उपकार करना, इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

7. सबमें प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथा योग्य वर्तना चाहिए।

8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालन में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

मनन करने योग्य—

1. ईश्वर आपके अन्दर है। अक्षय शक्ति का अजस्त्र श्रोत आपके अन्दर ही है। अपने भीतर ईश्वरी सत्ता का अनुभव कीजिए।

2. ध्यान कीजिए कि आप यह नश्वर शरीर नहीं हैं वरन् अमर आत्मा हैं। मन आपका एक साधन मात्र है। ध्यान के द्वारा अपने हृदय में ईश्वर से मिलने का प्रयत्न कीजिए।

3. ईश्वर में दृढ़ विश्वास कीजिए। विश्वास ही ईश्वर की ओर जाने का राज मार्ग है।

4. आत्मा अजर, अमर है और शरीर नाशवान है, शरीर वस्त्र की तरह बदलता है।

5. मनुष्य का सच्चा भूषण, विद्या, ब्रह्मचर्य, विनय, सदाचार, शीलता और व्यवहार कुशलता है।

6. डर का कोई स्थान नहीं हैं, क्योंकि ईश्वर सर्वत्र व्यापक है।

7. खाया हुआ अपना नहीं होता, अपितु पचाया हुआ अपना होता है। इसी प्रकार कमाया हुआ धन अपना नहीं होता, अपितु परोपकार में लगाया हुआ धन ही अपना होता है।

8. मैं कोन हूं, कहाँ से आया हूं, कहाँ जाऊंगा, क्या कर रहा हूं और क्या करना चाहिए, इन पांच प्रश्नों पर वार-बार विचार करो और सत्य का निर्णय कर, उस पर चलने का प्रयत्न करो।

9. आपका मूल मंत्र सेवा, प्रेम, दान, संयम, नम्रता, दया, शुद्धता और धैर्य होना चाहिए।

10. खान-पान, क्रीड़ा-मनोरंजन और सारे कार्यों में संयम और मध्यम मार्ग का अनुशरण कीजिए।

भगवान कब याद आते हैं—

1. विद्यार्थी को परीक्षा भवन में--
2. नौकर की नौकरी छूट जाने पर—
3. गरीब को भूख लगने पर
4. दुकानदार को ग्राहक न आने पर
5. कंजूस का पैसा खो जाने पर
6. मित्र को मित्र के धोखा देने पर
7. राजा को प्रजा के बिगड़ जाने पर
8. चोर को पकड़ें जाने पर
9. माता पिता को पुत्र के कुपुत्र निकलने पर
10. रिश्वतखोर को रिश्वत लेते पकड़े जाने पर
11. धनी का धन लुट जाने पर
12. नेता को चुनाव हारने पर
13. पापी को मृत्यु समय पर
14. परम ज्ञानी व भक्त को सदैव भगवान याद आता रहता है।

सन्ध्या सम्बन्धी ज्ञान—

प्रश्न—सन्ध्या किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्यक् ध्यायन्ति, ध्यायते वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या अर्थात् भलीभांति ध्यान करते हैं या किया जाय परमेश्वर का जिस क्रिया में, वह सन्ध्या कहलाती है।

प्रश्न 2. सन्ध्या किस समय करनी चाहिए ?

उत्तर— रात और दिन की सन्धि के समय अर्थात प्रातः और सायं दो बार सब मनुष्यों को ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए।

प्रश्न 3. सन्ध्या क्यों करनी चाहिए ?

उत्तर—क्योंकि प्रत्येक मनुष्य दुःखों से छूटना चाहता है। दो ही कर्म फल के रूप हैं— दुखः और सुख। ईश्वर की भक्ति सुख देती है क्योंकि जिसके पास जो वस्तु का गुण होता है, वह वस्तु का गुण उसी से प्राप्त हो सकता है। वह परमेश्वर ही नित्य आनन्द स्वरूप है, अतः एव उसकी ही शरण में जाने से ही सुख और आनन्द प्राप्त हो सकता है।

प्रश्न 4. यदि कोई व्यक्ति अच्छे विचार रखता है, अच्छे कार्य करता है तो उसे सन्ध्या करने की आवश्यकता नहीं ? क्योंकि फल तो कर्म का मिलता है ?

उत्तर—सन्ध्या कर्म ही नहीं सुकर्म है और इस क्रिया में अच्छे विचार भी उत्पन्न होते हैं। इससे आत्मिक सुख और पारलौकिक आनन्द मिलता है। जैसे अग्नि के पास आने वाले प्रत्येक प्राणी को गर्मी और चन्द्रमा की चाँदनी में शीतलता मिलती हैं ठीक इसी प्रकार प्रभु की शरण में जो पहुँचता है, उसे वह आनन्द कन्द भगवान् अपनी आनन्द की किरणों से आनन्दित अवश्य करता है। संसार की अन्य किसी वस्तु, संसर्ग या कार्य में वह आनन्द कदापि प्राप्त नहीं हो सकता।

प्रश्न 5. वैदिक सन्ध्या ही क्यों करनी चाहिए ? अन्य उपासना पद्धतियों से इसमें क्या विशेषता है ?

उत्तर--सभी मनुष्यों के जीवन में तीन ही कर्तव्य होते हैं-(1) मनुष्य को अपने साथ क्या करना चाहिए ? (2) मनुष्य को दूसरों के साथ क्या करना चाहिए ? (3) मनुष्य को ईश्वर के प्रति क्या करना चाहिए ?

वैदिक सन्ध्या में इन तीनों कर्तव्यों का भली-भाँति चिन्तन व मनन करना होता है जो प्रत्येक मानव को आवश्यक हैं। यह विशेषता और पूर्णता अन्य किसी पद्धति में नहीं है। ध्यान दीजिये—

(क) अपने प्रति कर्तव्य निम्न प्रकार है—

(1) इन्द्रियों को बलवान बनाना।

(2) इन्द्रियों को यशस्वी बनाना।

(3) इन्द्रियों को पवित्र बनाना।

(4) प्राणायाम द्वारा शरीर और मन को पुष्ट और एकाग्र करना। श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न कर पापों से दूर होना।

(ख) दूसरों के प्रति कर्तव्य—

1. सब दिशाओं में प्रत्येक स्थान पर ईश्वर की व्यापकता का अनुभव करना।

2. सर्व व्यापक प्रभु को ही अन्तर्यामि परम रक्षक समझना।

3. सब प्राणियों को उसी प्रभु के अमृत पुत्र समझ कर द्वेष भाव को सर्वथा नष्ट करके भ्रातृभाव उत्पन्न करना।

(ग) ईश्वर के प्रति कर्तव्य—ईश्वर के प्रति मनुष्य का कर्तव्य है "उपस्थान" अर्थात समीप बैठना। यही मानव जीवन का परम लक्ष्य हैं। मनुष्य इस अवस्था में पहुँचकर संसार के समस्त क्लेशों से मुक्त हो जाता है तथा अमृत प्राप्त कर लेता है।

संक्षेप में मानव जीवन के समस्त कर्तव्यों की योजना एवं उसकी पूर्ति का साधन केवल मात्र वैदिक सन्ध्या में ही निहित है। अतः मानव मात्र को वैदिक सन्ध्या करना ही सर्वथा उपयोगी है।

प्रश्न 6. सन्ध्या में मुँह किधर को रखा जाय ?

उत्तर—सामान्यतया प्रातःकाल पूर्व को तथा सायं काल पश्चिम को मुख करना चाहिए। विशेष रूप से जिधर की वायु चल रही हो या जिधर जल हो, उधर को मुख करके सन्ध्या करनी चाहिए।

देव यज्ञ सम्बन्धी ज्ञान

प्रश्न 1. देवयज्ञ किसे कहते हैं ?

उत्तर—देवयज्ञ का दूसरा नाम "अग्निहोत्र" है। अग्नि का परमेश्वर के लिए जल और पवन की शुद्धि या ईश्वर की आज्ञा पालन के अर्थ होम जो हवन अर्थात दान करते हैं उसे "अग्निहोत्र" कहते हैं।

प्रश्न 2. हवन करने से क्या लाभ हैं ?

उत्तर—जैसे दुर्गन्धित वायु से और जल से रोग, और रोगों से प्राणियों को दुःख होता है वैसे ही सुगन्धित वायु और जल से आरोग्य और रोगों के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न 3. घृत जैसे पदार्थ को अग्नि में भस्म कर देना तो कोई बुद्धिमानों का काम नहीं। इससे तो किसी को खिला दिया जाय तो अच्छा है ?

उत्तर—यह बात पदार्थ विद्या को न जानने वालों की है, क्योंकि कोई भी पदार्थ कभी समाप्त नहीं होता, केवल स्थूल और सूक्ष्म ही होता है अग्नि में डाला हुआ लाभदायक पदार्थ सूक्ष्मरूप होकर हजारों गुना लाभदायक होता है। देखो, जैसे एक मिर्च खाने से खाने वाले का कुछ नहीं विगड़ता जब उसे आग में डाल दिया जाय, तो सूक्ष्म होकर फैलाकर दूर-दूर तक लोगों को छींक दिला देती है। रत्ती भर हींग पर्याप्त दाल आदि को सुगन्धित कर देती। इसी प्रकार घी और सामग्री जलती अग्नि द्वारा हलकी होकर सुगन्ध रूप में वायु में फैलती है और दूर-दूर तक सभी मनुष्यों को प्रभावित करती है। अतः जितना घृत खाने से एक मनुष्य का उपकार होता है, उतने घृत का हवन करने से लाखों प्राणियों को लाभ होता है।

प्रश्न 4. क्या हवन न करने से पाप होता है ?

उत्तर—हाँ ! क्योंकि मनुष्य जितनी दुर्गन्ध अपने शरीर से निकाल कर जलवायु को दूषित करता है। यदि उतनी सुगन्ध जलवायु को नहीं देता, तो पाप का भागी अवश्य होता है।

प्रश्न 5. धूपवत्ती, अगरवत्ती आदि से भी यह काम हो सकता है।

उत्तर—नहीं क्योंकि इन पदार्थों से सुगन्ध तो हो सकती हैं किन्तु भेदक शक्ति, न होने से घर की दूषित वायु को बाहर निकलना और शुद्ध सुगन्धित वायु को घर में प्रवेश करा देना इनके बस का नहीं। यह कार्य अग्नि ही करा सकती है। अतः हवन का उद्देश्य अगरबत्ती आदि से नहीं हो सकता।

प्रश्न 6. हवन के मन्त्र बोलने से क्या लाभ है ?

उत्तर—मन्त्र बोलने से अनेक लाभ हैं—

(1) हवन के मन्त्रों का ज्ञान—अर्थ जानने से।

(2) प्रभु से अनेक प्रार्थनाएँ।

(3) वेद पढ़ना रूप परम धर्म।

(4) नित्य पाठ करने से मन्त्र याद होकर वेद की रक्षा।

प्रश्न 7. पुरोहितादि का स्थान यज्ञ में किस प्रकार होता है ?

उत्तर—यजमान और होता का आसन यज्ञवेदी के पश्चिम में, पूर्वाभिमुख, अध्वयु का आसन उत्तर में दक्षिणाभिमुख, उद्गाता का आसन पूर्व में पश्चिमाभिमूख और ब्रह्मा का आसन दक्षिण में उत्तराभिमुख होता है। ब्रह्मा ही यज्ञ का अधिष्ठाता होता है।

ईश्वर भक्ति के लाभ

हमें भगवान की भक्ति, क्यों करनी चाहिए ? जन साधारण भक्ति का प्रयोजन यह समझते हैं कि हम भक्ति के साथ जो प्रभु के गुणों का कीर्तन करते हैं, उस अपनी प्रशंशा से भगवान प्रसन्न हो जाते हैं और हमारे पाप कर्मों का फल दुःख, हमें नहीं देते, किन्तु इसके बदले में हमें सुख दे डालते हैं। भक्ति का यह प्रयोजन नहीं है। हमारे ऋषियों ने कहा है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं, कृतं कर्म शुभाशुभम्।

हमें अपने अच्छे और बुरे कर्मों का फल सुख और दुःख भोगना ही पड़ता है। और—

नाभुक्तं क्षीयते कर्म, कल्पकोटि शतैरपि।

अर्थात्—कर्म का फल जब तक न भोग लिया जाये, तब तक वह सो करोड़ वर्षो में भी क्षीण नहीं होता। स्वयं वेद में कहा है—

"पक्तारं पक्वः पुनराविशति" अथर्वः।2।3।48

अथर्ति – मनुष्य जैसा पकाता है, जैसा करता है, वह पकाने वाले को करने वाले को, वैसा ही प्राप्त होता है। भाव यह है कि जैसा करते हैं वैसा भरते हैं। वेद में ही अन्यत्र कहा हैं—

छिन्नतु सर्वे अनृतं वदन्त, य सत्यवाद्यति तं सृजन्तु। अथर्व 4।16।6

अर्थात्—हे वरुण । असत्यवादी को तुम्हारा पाश बांध लेवे और सत्यवादी को छोड़ देवे। फिर कहा हैं—

मा ते मोचि अनृतवाङ् नृचक्षः। अथर्व 4।16।7

अर्थात्—मनुष्य को पहिचानने वाले हे वरुण भगवान ! अनृत वाणी

वाला झूंठा व्यक्ति तुम्हारे पास से छूट नहीं पाता है। अन्यत्र कहा है—

राजा वरूणो याति मध्ये सत्यनृते अपश्यन जनानाम।अथर्व. 1।33।2

अर्थात्—राजा वरुण सब लोगों के झूंठ और सत्य को भली भांति देखते हुए, सब के बीच में चल रहे हैं, असत्यवादी को उनके पाश बांध लेते हैं और सत्यवादी को छोड़ देते हैं।

वेद के इन कथनों का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि हमें हमारे पुण्य और पाप कर्मों का फल मिल कर ही रहता है, उससे छुटकारा नहीं है। तब हमें भगवान की भक्ति, क्यों करनी चाहिए ? भक्ति का तब हमें क्या लाभ है ?

भक्ति का अर्थ होता है, प्रेम में भरकर प्रभु के गुणगान। हमें प्रेम में भरकर प्रभु की स्तुति करनी चाहिए, ऐसा वेद में कई जगह कहा गया है। प्रेम का स्वभाव यह है कि हम जिससे प्रेम करते हैं, उसमें हमें नये नये गुण दृष्टिगोचर हुआ करते हैं और गुण दीखने पर हम में गुणवान के प्रति और भी अधिक प्रेम उत्पन्न हो जाया करता है। यह भी मानव मन का एक स्वभाव है। इस प्रेममयी वृत्ति में भरकर प्रभु की भक्ति करने से उसके गुणों का स्मरण और चिन्तन करने निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं—

(1) संसार की चिन्ताओं से मुक्ति—जितनी देर हम प्रेम में मग्न होकर प्रभु की भक्ति करते हैं, उतने समय के लिए हमें संसार की चिन्ताओं से मुक्ति मिल जाती हैं। उस समय हम आनन्द की अवस्था में रहते हैं। जब हम भक्ति करके उठते हैं तो हमारे मन और शरीर में निराला उत्साह, फुर्तीलापन और प्रसन्नता रहती है।

(2) प्रभु के गुणों की प्राप्ति—भक्ति के समय प्रेम में भर कर प्रभु के गुणों का चिन्तन करने से हमारे अन्दर प्रभु जैसा बनने की इच्छा जाग उठती है। प्रभु के सत्य न्याय, ज्ञान, बल, नियम परायणता और दया आदि गुणों को अपने भीतर धारण करने लगते हैं। इससे हमारे मन में पवित्र भाव पैदा हो जाते हैं और भविष्य में हम से बुरे कर्म होने बन्द हो जाते हैं।

(3) **संसार का व्यवहार अच्छा चलना**—जो लोग ईश्वर की भक्ति में बैठकर उसके गुणों को अपने जीवन में धारण कर लेते हैं उनके सभी प्रकार के सांसारिक व्यवहार बहुत सुन्दर रीति से चलते हैं। वे सबमें अपने प्रभु को देख कर उनसे प्रीति करते हैं।

(4) **प्रभु की निकट संगती**—ईश्वर की भक्ति के समय, हम अनुभव करते हैं कि प्रभु हमारे अति निकट है, वह बाहर, भीतर सब ओर फैला हुआ हैं। इस परम पवित्र की प्रेम पूर्वक की हुई संगति हमें भी पवित्र बना देती है। हम उसके गुणों को जीवन में धारण करते हुए मानसिक रुप से सदैव उसके पास बैठ सकते हैं।

(5) **मानसिक और शारीरिक रूप से शक्तिशाली**—जो लोंग ईश्वर की संगत में बैठकर, उसके गुणों कों अपने में धारण कर लेते हैं उनकी निर्मल आत्माओं ने प्रभु के ज्ञान, बल और आनन्द आदि गुण संक्रात कर देते हैं। वे मानसिक और शारीरिक रूप से अधिक शक्तिशाली हो जाते हैं। वे फिर संसार के दुःखो से नहीं घबराते हैं।

(6) **मुक्ति की प्राप्ति**—भक्ति से पवित्र बना हुआ व्यक्ति जब शरीर को छोड़ता है तो वह इस पवित्रता के फलस्वरूप सीधा मुक्त अवस्था में चला जाता है। प्रकृति के बन्धन से मुक्त होकर प्रभु का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। भगवान आनन्दमय है। वेद के शब्दों में—"रसने तृप्तः" रस से तृप्त हैं। भक्त भी एक बहुत लम्बे समय तक आनन्द के अमृत का लाभ उठाता है।

इस प्रकार ईश्वर की भक्ति से बहुत लाभ होते हैं परन्तु भक्ति के ये लाभ तभी प्राप्त होगें, जब हम उसके द्वारा भगवान के सत्य, न्याय, दया और प्रेम आदि गुणों को धारण करके पवित्र बन जायेंगे

सच्चा सुख तथा उसकी प्राप्ति का साधन

इस संसार में प्रत्येक प्राणी सुख और शान्ति का इच्छुक है। शाम शब्द का अर्थ है कर्म के फलों को समाप्त करने वाला ज्ञान। कर्म के फल की समाप्ति के पश्चात् जीव मोक्ष प्राप्त करता है

किन्तु संसार के नश्वर सुख से हटकर, न नाश होने वाला जो सुख है, वह परमेश्वर के आधीन है। वेद कहता है—

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

अर्थात्—उसी परमेश्वर को जानकर ही जीवात्मा मरने के भय से मुक्त हो सकता है, और कोई रास्ता नहीं, यह निश्चय जानो। परमेश्वर को कैसे प्राप्त करें, यह सामवेद का मन्त्र दर्शाता है—

सोमं पुनान उर्मिणाव्य वार विधावती। अग्ने वाचः पक्मानः कनिक्रदत। साम. 572, परमात्मा पवित्र करता हुआ, उर्ध्वगतिसे, ज्ञान की लहर से, उपासक के अज्ञान के आवरण के पार कर देता है। वह हृदय में भावना पुर्ण रोमान्च के साथ विशेष प्रकार से दौड़ रहा है। वह वेद वाणी के आगे आगे "ओउम्" के रूप में उच्चारण किया जाता है। इसी प्रकार एक दूसरे मंत्र में—

सख्ये ते इन्द्रं वाजिनो मा भेम शवशस्यते।
त्वामभि प्रणो नुभो जेतारमपराजितम् ॥ साम. 828

अर्थ—हे इन्द्र! आपकी मैत्री में हम अन्न और बल से युक्त हों, किसी से न डरें। हे बलपते! सबको जीतने वाले और किसी से भी न हारने वाले! हम बारम्बार आपको प्रणाम और स्तुति करने हैं।

इसी प्रकार से एक साम. के अन्य मंत्र में कहा है—
"अग्ने सख्ये मारिषामा वयम् तव।"

अर्थात—हे अग्नि स्वरूप परमेश्वर! तेरी मित्रता में हम कभी भी दुःखी और भयभीत न हो। लेकिन हम विचारें कि परमेश्वर के साथ मिलाप कैसे हो? मित्रता कैसे हो? मित्रता उन दो व्यक्तियों में सम्भव हो सकती है जिनके गुण कर्म स्वभाव मिलते हों। जैसे गौओं के समुदाय में एक गाय क्रोध युक्त हो और दूसरी शान्त हो, तो उनका एक जगह बैठना असम्भव है। इसी प्रकार जिस जीव के गुण, कर्म स्वभाव परमेश्वर के साथ नहीं मिलते, उनकी परस्पर मित्रंता होनी असम्भव है। विना परमेश्वर की मित्रता के उसका जो आनन्द स्वभाव है, उस आनन्द की झलक हमारे अन्तःकरण में प्रविष्ठ नहीं हो सकती।

उसकी मित्रता के लिए हम परमेश्वर का कौनसा गुण धारण करें, यह विचारने की वात हैं ।

वेद में स्वतः उपरोक्त वेद से उधृत मन्त्र के भाग में "अग्ने" शब्द का प्रयोग किया है। अग्नि शब्द का अर्थ है ज्ञान स्वरूप। अतः परमेश्वर से मित्रता करने का पहला साधन ज्ञान है। इसके प्रमाण के लिए महाभारत का उदाहरण देता हूं—

एक समय वन में जाते हुए युधिष्ठिर जी को प्यास लगी वे अर्जुन से बोले—हे अर्जुन वृक्ष पर चढ़ कर देखो, कहीं पानी प्रतीत होता हो तो लाओ। अर्जुन ने वृक्ष पर चढ़ कर देखा कि कुछ दूरी पर एक तालाब है। वह भाई के लिए जल लेने को तालाब पर गये। वहाँ पर रहने वाले यक्ष ने कहा—कि है मनुष्य पहिले मेरे प्रश्नों के उत्तर दो, तब जल लाना अन्यथा अनर्थ हो जायेगा। किन्तु अर्जुन ने इसे अपना अपमान समझ कर बल पूर्वक जल लेना चाहा, तब यक्ष ने उसे मूर्छित कर दिया। इसी प्रकार बारी—बारी से चारों भाई वहाँ मूर्छित हो गये। अन्त में युधिष्ठिर वहाँ पहुँचे, तो यक्ष के प्रश्न करने पर, युधिष्ठिर बोले कि शास्त्र की मर्यादा है कि पर वस्तु पर बिना स्वीकृति के अपना अधिकार न जमावे। अतः पहिले प्रश्न का उत्तर दूंगा, तत्पश्चात् जल लूगां। आप प्रश्न कीजिए।

यक्ष ने पूछा—(1) दुःख के कीचड़ में फँसे हुए जीव को अमृत सुख में ले जाने का क्या साधन है?

(2) कौन-कौन से गुण उस साधन के सहायक हैं?

(3) कौन-कौन सा सुख उस साधन को अपने स्वरुप में ले जाता है?

(4) कौन से गुण में वह साधन टिकता है?

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—

(1) ब्रह्म ज्ञान जीव को अमृत सुख में ले जाता है।

(2) शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधि और श्रद्धा यें छः गुण इस साधनभूत ब्रह्म ज्ञान के सहायक हैं।

(3) धर्म—ब्रह्म ज्ञान को अपने शुद्ध स्वरुप में टिकाता है।

(4) वह ब्रह्म ज्ञान सत्य में प्रतिष्ठित होता है।

इसलिए प्यारे भाइयों ! जो इस संसार के नश्वर सुख से उठकर उस परमेश्वर के अमृत रस का पान करना चाहें, उन्हें इसी जीवन में ब्रह्म ज्ञान को सत्संग द्वारा प्राप्त करने का यत्न करें और उसके जो सहायक साधन हैं, उनको प्राप्त करता हुआ स्वतः अपना जीवन सुखी बनाने और दूसरे का जीवन सुखी करें। परमेश्वर वक्ता श्रोताओं में यह बल प्राप्त कराके सबको सुखी करे।

वैज्ञानिकों की दृष्टि में यज्ञ

प्रश्नः—यज्ञ को होम, हवन आदि भी कहते हैं। हवन के नाम पर अग्नि में घी फूकना ठीक नहीं ? इससे तो अच्छा किसी गरीब को खाने को दे दिया जाय ?

उत्तर—हम जो भोजन करते है, यदि वह न पचे तो क्या लाभ होगा ? नहीं पचने की क्रिया—आयुर्वेद के विद्वान, इस प्रक्रिया को भोजन का जठराग्नि द्वारा फूंका जाना बताते हैं। यदि जठराग्नि मन्द हों तो भोजन नहीं पचता। वैद्य जठराग्नि को तीव्र करने की औषधि देते हैं। वैज्ञानिक नियम भी यहीं है, कि वस्तु ऊर्जा तभी बनती है जब वह फूंकी जाय। स्कूटर, कार, वायुयान, बस, ट्रक तभी तक दौड़ते हैं जब तक उनमें ईंधन फुंकता रहे। जैसे या यानादि में ईंधन फूंकने से ऊर्जा बनती है वैसे ही यज्ञ मे फूंका घी पर्यावरण के शोधन के लिए ऊर्जा उत्पन्न करता है तथा उससे विश्व में अनेक रोगों से बचा जा सकता है।

यज्ञ का महत्त्वः—(1) मन्त्रोंचारण (2) समिधा (3) यज्ञकुण्ड (4) घी (5) सामग्री आदि।

(1) मन्त्रोंचारण—हिंसक लोग जो निरीह पशुओं को मार देते हैं उनकी आहें वातावरण को विक्षुब्ध कर देती हैं। शब्द नष्ट नहीं होता वह जैसे हमारे हृदयों को विक्षुब्ध करता है वैसे ही वातावरण को भी विक्षुब्ध करता है। जहां हा-हा कार मचा हो, वहां सोया नहीं जा सकता। यही स्थिति वातावरण के साथ घटित होती है। सस्वर

उच्चरित वेदमन्त्र वातावरण के ध्वनि प्रदुषण को नष्ट करके, उसे विशुद्ध बनाते हैं।

(2) समिधा—ये प्रायः दो प्रकार की होती हैं एक कम कार्बन वाली तथा दूसरी अधिक कार्बन वाली। इसकी पहिचान यह है कि जिसमें कीड़े, शीघ्र लगें, उसमें कार्बनडाई ऑक्साइड कम होती है और जिसमें कीड़ा देर से लगे उसमे कार्वनडाईऑक्साइड अधिक होती है। यज्ञ में आम, पीपल, वट, वेल, ढाक, चन्दन आदि की समीधाएँ प्रयुक्त होती हैं, इनमें कीड़ा शीघ्र लगता है अतः स्पष्ट है कि इनके जलाने पर कार्वन कम होती है। इसलिए ये समिधाएँ यज्ञ के पास वैठने वाले को उचित ताप देती हैं जिससे स्वास्थ्य लाभ होता है।

(3) यज्ञ कुण्ड की बनावट- यज्ञ कुण्ड की बनावट ऋषियों ने ऐसी रखी है कि वह नीचे जितना लम्बा चौड़ा होता है, ऊपर उससे चार गुना चौकोर होता है। इस रचना का प्रयोजन है कि कुण्ड में अधिक से अधिक ताप उत्पन्न हो। कुण्ड में ताप की जितनी तीव्रता होगी, हुत द्रव्य उतनी ही तीव्रता से फैलकर पर्यावरण का शोधन करेगा। यज्ञ में समिधाएँ फैंकी नहीं जाती अपितु क्रमशः एक के ऊपर एक लगाई जाती है। इससे ऑक्सीजन के जाने में सहायता मिलती है। लोहे के यज्ञ कुण्डों में छेद करने का भी यही प्रयोजन है। यज्ञ कुण्ड के ऊपर जो जल के डालने की नाली बनाई जाती है, उसका प्रयोजन यह है कि कुण्ड से निकली कार्बन को पानी अपने में समाहित कर लेता है। कार्बन जल के साथ मिलकर ग्लूकोज का काम करती है। शीतल पेयों में कार्बन ही तो मिली होती है। सोडा वाटर शरीर को हानि नहीं पहुँचाता अपितु पाचन क्रिया को ठींक करता है, शेष बची कार्वन वृक्षादि का भोजन बन जाती हैं।

(4) घी—प्रश्न यह होता है कि थोड़ा सा घी पर्यावरण शोधन या अन्य लाभ कैसे कर सकता है? इस विषय में यह ज्ञातव्य है कि अग्नि में डाले घी की एक शीशी वाष्पीकरण होने पर 1700 शीशी बन जाती है। यह पर्यावरण में भर जाता है तथा जहाँ उनका शोधन करती है, वहाँ हमारे द्वारा नासिका द्वारा पीया जाता है। विज्ञ जन जानते है कि नाक से

ॐ

आनन्द की लहरें

(1) भगवान को साथ रखकर काम करने से ही पापों से रक्षा और कार्यों में सफलता होती है।

(2) किसी भी अवस्था में मन को दुःखी मत होने दो। याद रखो परमात्मा के यहाँ कभी भूल नहीं होती और न उसका कोई विधान दया से रहित ही होता है।

(3) दुःख मनुष्य के विकास का साधन है। सच्चे मनुष्य का जीवन दुःख में ही खिल उठता है। सोने का रंग तपाने पर ही चमकता है।

(4) वैरी अपना मन ही है, इसे जीतने की कोशिश करना चाहिए। न्याय और धर्मयुक्त शत्रु को भी अन्याय और अधर्मयुक्त मित्र से अच्छा समझना चाहिए।

(5) अपने पापों को देखते रहना और उन्हें प्रकाशित कर देना भी पापों से छूटने का एक प्रधान उपाय है।

(6) इस भ्रम में मत रहो कि पाप प्रारब्ध से होते हैं, पाप होते हैं तुम्हारी अज्ञानता से और उनका फल तुम्हें भोगना पड़ेगा।

(7) शरीर का नाश होना मृत्यु नहीं हैं, मृत्यु है वास्तव में पापों की वासना।

(8) दूसरों की त्रुटियों और कमजोरियों को सहन करो, तुममें भी बहुत सी त्रुटियाँ हैं, जिन्हें दूसरे सहते हैं।

(9) यदि बार बार आत्म निरीक्षण न कर सको—तो कम-से-कम दिन में दो बार सुबह और शाम अपना अन्तर (मन को) अवश्य टटोल लिया करो। तुम्हें पता लगेगा कि दिन भर में तुम ईश्वर के और जीवों के प्रति कितने अधिक अपराध करते हो।

(10) प्रतिदिन सुबह और शाम मन लगाकर भगवान का स्मरण अवश्य किया करो, इससे चौबीसों घण्टे शान्ति रहेगी और मन बुरे संस्कारों से बचेगा।

पीया जल दूध का कार्य करता है, दूध घी का तथा घी अमृत का कार्य करता हैं। अतः यज्ञ में डाला हुआ घी कितना लाभप्रद हो जाता है, इससे स्पष्ट है।

(5) **सामग्री**—सामग्री में चार प्रकार के पदार्थ होते हैं (1) पुष्टि-कारक (2) मिष्ट (3) सुगन्धित (4) रोगनाशक। ये पदार्थ पर्यावरण में पुष्टि, माधुर्य, सुगन्ध भरते हैं। तथा उसे रोग के कीटाणुओं से रहित करते हैं, इससे सब प्राणियों के शरीर तथा अन्न, जल औषध आदि पुष्ट, सुग-न्धित और रोग रहित होते हैं। यहीं संसार में सुख फलाने का मार्ग है। रोग नाश के लिए यज्ञ चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है। यज्ञ में डालने से घी की भाँति औषधियाँ भी अनेक गुणा लाभ करती हैं। चिकित्सा पद्धति में इन्जैक्शन को सद्य लाभकारी माना जाता है क्योंकि वह तुरन्त औषधि को रक्त में मिला देती है, किन्तु कभी कभी ये इन्जैक्शन पक जाते हैं तथा हानि करते हैं किन्तु यज्ञ से निकला वाष्प श्वास के साथ तुरन्त रक्त में मिलकर वही लाभ पहुँचाता है जो इन्जैक्शन से होता है। सामग्री में अनेक औषध तत्त्व होते हैं। यज्ञ भावित वायु श्वास द्वारा रक्त में मिलकर अनेक रोगों का शमन करती है। विदेशों में इसके अनेक परीक्षण हो चुके हैं। इस प्रकार यज्ञ एक सुखद जीवनीय पद्धति है जिससे व्यक्ति, समाज, तथा पूरा पर्यावरण प्रभावित होकर सुख, आरोग्य तथा बल आदि की प्राप्ति होती है।

उदाहरण—(1) उदाहरण के तौर पर यदि कोई मनुष्य एक लाल मिर्च को खाता है तो उसका ही मुँह जलता है। यदि इस एक लाल मिर्च को अग्नि में डाल दे तो जहाँ तक इसकी वायु जायेगी, सब छींकने लगेंगे क्योंकि अग्नि में डालने से उसकी शक्ति सो गुना बढ़ जाती है। इसी प्रकार एक तोला घी डालने से सो तोला घी की सुगन्ध आती है।

(2) दाल में थोड़े से हींग का छोकन देते हैं लेकिन इससे सारी दाल सुगन्धित हो जाती है। इसी प्रकार यज्ञ में अग्नि पर घी डालने से पर्यावरण शुद्ध हो जाता है तथा हानिकारक कीटाणु मर जाते हैं।

(11) बाहरी पवित्रता की अपेक्षा हृदय की पवित्रता मनुष्य के चरित्र को उज्जवल बनाने में बहुत अधिक सहायक होती है। मनुष्य को काम, क्रोध, लोभ, हिंसा, बैर दम्भ आदि के दुर्गन्ध भरे कूड़े को बाहर फेंककर हृदय को सदा साफ रखना चाहिए।

(12) कर्तव्य में प्रमाद न करना ही सफलता की कुन्जी है और उसी पर परमात्मा की कृपा होती है, आलसी और कर्तव्य विमुख लोग उसके योग्य नहीं होते हैं।

(13) ईश्वर सदा तुम्हारे साथ है, इस बात को कभी मत भूलो। ईश्वर को साथ जानने का भाव तुम्हें निर्भय और निष्पाप बनाने में बड़ा मददगार होगा। यह कल्पना नहीं है, सचमुच ही ईश्वर सदा सबके साथ है।

(14) कुसंग से सदा बचना चाहिए और सत्सङ्ग का आश्रय लेना चाहिए। विषयी पुरुषों का संग तो बहुत हानिकारक है। चेतन की तो बात ही क्या है, मन को लुभाने वाली और इन्द्रियों को आकर्षित करने वाली जड़ भोग्य वस्तुओं का संग भी हानिकारक हो सकता है।

(15) सुख तुम्हारे मन में है, न कि किसी कार्य या वस्तु विशेष में, चित्त शान्त है तो सुख है, नहीं, तो दुःख ही दुःख है। चित्त की शान्ति के लिए जगत की कामनाओं का त्याग जरूरी है।

(16) जीवन बीता जा रहा है, हम पल पल में मृत्यु की ओर बढ़ रहे हैं, बहुत ही जल्दी जीवन खत्म होगा, यह समझकर असली यात्रा के लिए, यहाँ का काम निपटाकर सदा कमर कसे तैयार रहो।

(17) गुण-दोष सब में रहते हैं, भूल सभी से होती है। यदि तुम किसी का कोई काम देखते ही उसमें दोष ढूँढने लगे तो, तो तुम्हारी वृत्ति आगे चलकर बहुत दूषित हो जायेगी। सब में गुण देखने की आदत डालो, देखो कितना आनन्द मिलता है।

(18) जगत में नाटक के पात्र की तरह रहो, अपना पार्ट पूरा करने में कभी चूको मत और किसी भी पदार्थ को अपना समझो मत। पार्ट करने में चूकना नमक हरामी और किसी को अपना मानना बेईमानी है।

(19) धन, मकान मनुष्य, शरीर आदि के बल पर न इतराओ, यह सारा बल पल भर में नष्ट हो सकता है। सच्चा बल ईश्वरीय बल है, उसी को प्राप्त करो।

(20) भगवान पर दृढ विश्वास रखो, तुम्हारे मन में जितना भगवान का विश्वास अधिक होगा, तुम उतना ही भगवान की ओर आगे बढ़ सकोगे।

(21) जितना भरोसा बढ़ेगा, उतनी ही भगवान की कृपा की झाँकी प्रत्यक्ष दीखेगी।

(22) जहाँ अस्पताल और वैद्य डॉक्टर ज्यादा हो, समझो कि वहाँ के मनुष्यों का शारीरिक पतन हो चुका है। जहाँ वकील ज्यादा हो और कचहरी में भीड़ रहती हो, समझो कि वहाँ के मनुष्यों की ईमानदारी प्रायः नष्ट हो चुकी है और जहाँ गन्दा साहित्य बिकता हो, समझो कि वहाँ के लोगों का नैतिक पतन हो चुका है।

(23) एक दिन अवश्य मर जाना है, इस बात को भूलो मत। मृत्यु के भयानक दृश्य को याद रखो। मरते हुए मनुष्य की घृणित दशा का स्मरण करो। उसके दुःख से भरे हुए निराश नेत्रों की भयानकता का ध्यान करो। एक दिन तुम्हारी भी यही दशा होने वाली है।

(24) भगवान से माँगना ही ठगाना है। कारण, वह परम दयालु भगवान हमारा जितना हित सोच सकता है, उतना सोचने के लिए हमारी बुद्धि कभी समर्थ ही नहीं है।

(25) भगवान पर कभी अविश्वास न करो, यह सबसे बड़ा पाप है। भगवान के नाम पर विश्वास रखो। नाम के बारे में संतों का एक एक वचन सत्य है। नाम की शरण लेकर परीक्षा कर देखो।

(26) अगर तुम यह अनुभव कर सको कि ईश्वर की शक्ति तुम्हारे अन्दर काम कर रही है तो तुम्हारा जीवन आनन्दमय हो जायेगा।

(27) साधक को लक्ष्य की ओर अपनी दृष्टि बनाए रखनी चाहिए। एक बार जब उसने इस मार्ग पर पैर रख दिये, तब फिर भला किसी तुच्छ वस्तु के लिये, वह कैसे पीछे हट सकता है।

(28) सब प्रकार के संशय और दुःखों के समय यह कहना कि मैं भगवान का हूँ, मैं कभी असफल नहीं हो सकता। मैं अमृत ईश्वर) का पुत्र हूँ, भगवान ने मुझे वरण किया है। मैं सभी परिक्षाओं और दुर्गतियों को पार करता हुआ, इस दिव्य यात्रा में एक दम अन्त तक डटा रहूँगा।

(29) तुम इस बात पर अधिक ध्यान दो, जो तुम्हारा आदर्श है। और यह विश्वास बनाए रखो कि इसे मैं अवश्य ही इसी जन्म में पूरा करूँगा तो वह अवश्य ही पूरा होगा।

(30) ईश्वर की संरक्षकता के ऊपर अपना ध्यान एकाग्र करो। ज्योति, स्थिरता, शांति, और ज्ञान में वृद्धि के लिए प्रार्थना करो।

मोक्ष साधकः गायत्री

(1) गायत्री मन्त्र—ओउम् भूर्भुवः स्वः, तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

अर्थ—हे सर्व रक्षक ईश्वरः प्राणों क आधार, दुःख दूर करने वाले, आनन्द के देने वाले प्रभो! आप सकल जगत के उत्पादक है, सबसे श्रेष्ठ, शुद्ध स्वरूप, आपके दिव्य गुणों का ध्यान करते हैं, आप हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

पद्यार्थ—

तूने हमें उत्पन्न किया, पालन भी कर रहा है तू।
तुझ से ही पाते प्राण हम, दुखियों के कष्ट हरता तू ॥
तेरा महान तेज है, छाया हुआ सभी स्थान।
सृष्टि की वस्तु वस्तु में, तू हो रहा है विद्यमान ॥
तेरा ही धरते ध्यान हम, मांगते तेरी दया।
ईश्वर हमारी बुद्धि को, श्रेष्ठ मार्ग पर चला ॥

गायत्री मंत्र अपने अन्दर एक व्यापक भाव रखता है। यह मानव जीवन के प्रत्येक अंग से जुड़ा हुआ है। यह अपने आप में एक पूर्ण जीवन दर्शन है। यह केवल ज्ञान-दायिनी ही नहीं केवल एक प्रार्थना ही नहीं, अपितु यह, मनुष्य की प्राण रक्षा करते हुए, इस भूलोक को स्वर्ग लोक कैसे बनाता है, उसकी सत्य विद्या है। इसमें सांसारिक ऐश्वर्य को त्यागने

की बात नहीं कही गई है, अपितु अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों प्रकार के विकास से ही मानव जीवन की पूर्णता होती है, यह सत्य प्रतिपादित किया गया है।

अर्थं (ओउम्) यह शब्द परमेश्वर का सर्वोतम नाम है। क्योंकि इसमें अ, उ और म् अक्षर मिलकर (ओउम्) समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत से नाम आते हैं -जैसे अकार से विराट, अग्नि और विश्वादि, उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तेजस तथा मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है।'भूः+भुवः+स्वः" को व्याहृति हते है। व्याहृति=वि+आ+हृति= विविध उपायों द्वारा चारों तरफ से इक्ठ्ठा करके लाना। इसका भाव है कि मनुष्य इधर-उधर विचरता है, नाना विषयों पर सोचता है। यह सब करने के बाद वह सारे "देखे जाने समझे बूझे" को एक पते की बात पर केन्द्रित करता है, उसे तब जो जीवन-सूत्र का पता चलता है वही व्याहृति है।

"भू" शब्द का अर्थ "होना" है जिसका अर्थ सत्ता, अस्तित्व है। इसका अर्थ भूमि, पृथिवी आदि भी हैं। इसमें सब भौतिक तत्व अन्तर्हित हैं। जो भी "सत्तवान पदार्थ हैं उन्हें 'भू' वर्ग में रखा जा सकता है। "भू लोक" का अर्थ पृथ्वी तथा तत्सम्बन्धी पार्थिव पदार्थ है। "भू" प्राणों के आधार होने से परमात्मा है।

"भुवः" शब्द का अर्थ है चिन्तनम्। इसमें चेतना, कल्पना, ज्ञान विज्ञान, तत्वबोध, विद्या आदि हैं। भुव ! दुःख से दूर कर्ता को भी कहते हैं। "स्वः" शब्द का अर्थ सुख होता है। यह एक विशेष वैदिक परिभाषा है जिसका अभिप्राय "आनन्द" व आत्म विभोर होना है। परमात्मा स्थाई सुख देने वाला है इसलिए उसे आनन्द का दाता कहते हैं। संक्षेप में "भूः+भुवः" से अभिप्राय अभ्यूदय से है और "स्व." से निःश्रेयस अभिप्रेत है। प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपनी भूः= सत्ता को स्थापित करे, अर्थात् मेरी सत्ता का आधार परमात्मा है। भुवः =वह ईश्वर दुःख विनाशक तथा स्वः आनन्द का देने वाला है।

अथर्व वेद 11।71।1 के अनुसार—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्म वर्चसम् मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्म लोकम् ।

अर्थ—ज्ञान दाता परमात्मा वेद के इस मंत्र में कहते है—"हे जीवो ! मैंने वरों=इष्ट कामनाओं को पूरा करने वाली वेदमाता= गायत्री विद्या, स्तुता=वर्णन कर दी है। यह द्विजानां=दो जन्म अर्थात् माता-पिता के सम्बन्ध से शारीरिक-जन्म तथा आचार्य के सम्बन्ध से विद्या-जन्म की प्राप्ति की क्षमता रखने वाले सब मनुष्यों को पावमानी=पावन पवित्र करने वाली है। प्रचोदयन्ताम्=यह सबको प्रज्ञा और कर्म में प्रेरित करे। इसके अर्थ के अनुष्ठान द्वारा इस लोक में प्राप्त प्राण आयु, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविणां=धनैश्चर्य और ब्रह्मवर्चस् को, मह्यं दत्त्वा= मुझे समर्पण करके, ब्रह्मलोक प्राप्त करो अर्थात् मोक्ष के सुख ही स्वतन्त्रता से विचरण करो ।

और उपासक जीव कहता है "मैंने वेदमाता गायत्री का स्तवन अर्थात् अर्थ पूर्वक जप और जीवन में अनुष्ठान कर लिया हैं। यह सबको प्रज्ञा और कार्म में प्रेरित करे। यह गायत्री माता आयुः, प्राण प्रजा, पशु, कीर्ति, धन और ब्रह्मवर्चस प्राप्त करा के, मुझे ब्रह्मलोक प्राप्त करावे अर्थात् परम दर्शनीय परमेश्वर के मोक्ष पद को पहुंचावे ।"

गायत्री मन्त्र के जप से लाभ—गायत्री मन्त्र के जपने से मनुष्य का सर्वाङ्गीण विकास होता है। इस मन्त्र में पहिले ईश्वर का मुख्य नाम ओउम् फिर उसके गुण तथा अन्त में बुद्धि को सत्कर्मों में प्रेरित करने की प्रार्थना की गई है। चारों वेदों में 20380 मन्त्र है। इस गायत्री मन्त्र को ही गुरू मन्त्र और महा मन्त्र भी कहा जाता है। मन्त्र का जप अर्थ के साथ करना चाहिए और यह भावना वनानी चाहिए कि वह ईश्वर मेरा रक्षक है, वह सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है। इसकी उपासना से बुद्धि सतोगुणी होती है,बुद्धि की स्मरण शक्ति भी बढ़ जाती है। जिसकी बुद्धि सात्विक और कुशाग्र होती है, वह प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त करता है। बुद्धि के सात्विक होने से दुर्गुण और दुर्व्यसनों से भी मानव बच

जाता है। इसके जप से मानव की गुप्त शक्तियों का विकास होता है। इसके साथ ही यज्ञों के अवसरों पर गायत्री मन्त्र द्वारा आहुतियाँ दी जाती हैं। यह गायत्री माता अपने भक्तों की रक्षा तो करती ही है, इसके साथ-साथ उनमें श्रेष्ठ गुण भी पैदा करती है। इसका लाभ मनुष्य के स्वास्थ्य, आयु, प्राण और उत्तम सन्तान के रूप में मिलता है। हमें भी प्रतिदिन प्रातः एवं सायं श्रद्धापूर्वक अर्थ सहित गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिए।

भजन

करो गायत्री जाप मनुवा धुल जायेगा।
मारो जोर की थाप, फाटक खुल जायेगा॥
अमृत वेले आश्रम आओ, धीरे-धीरे कदम बढाओ,
मन से करो अलाप—मनुवा धुल जायेगा॥
चारों वेदों में यह आया, राम श्याम ने इसको गाया,
करके देखो आप—मनुआ धुल जायेगा॥2॥
वृजानन्द गंगा में खड़े हैं, गायत्री का जाप करे हैं,
हो गया ओं मिलाप—मनुवा धुल जायेगा॥3॥
सो वर्षों तक जीना चाहो, अमृत रस तुम पीना चाहो,
स्वांस स्वांस में अलाप—मनुवा धुल जायेगा॥4॥
आशानन्द पै कष्ट जो आवे, गायत्री माँ की शरण में जावे,
करता रहे विलाप—मनुवा धुल जायेगा॥5॥

(2) ओउम् की महिमा

ओउम् ही जीवन हमारा, ओं प्राणधार है।
ओउम् है कर्ता विधाता, ओं पालनहार है॥
ओउम् है दुःख का विनाशक, ओं सर्वानन्द है।
ओउम् है बल तेज धारी, ओं करुणा कन्द है।
ओउम् सबका पूज्य है, हम ओं का पूजन करें।
ओउम् ही के ध्यान से, शुद्ध अपना मन करें॥
ओउम् के गुरू मन्त्र जपने, से रहेगा शुद्ध मन।
बुद्धि दिन प्रतिदिन बढ़ेगी, धर्म में होगी लगन।

ओउम् के जप से हमारा, ज्ञान बढ़ता जायेगा ।
अन्त में यह ओं हमको, मुक्ति तक पहुँचायेगा ॥

कामना

हों असत् से दूर भगवान, सत्य का वरदान दो ।
दूर कर द्रुत तिमर भगवान, शत्रु ज्योति विद्वान दो ॥
मृत्यु बन्धन से हटा, अमरत्व हे भगवान दो ।
प्रकृति पाशों से छुड़ा, आनन्द मधु का पान दो ॥

प्रार्थना

सुमरन भजन साधना द्वारा, तुमसे नेह लगाऊँ ।
घट घट व्यापी की छाया में, श्रेय मार्ग पर जाऊँ ॥
एक मात्र अवलम्बन सभी का, है तू आश्रय दाता ।
तेरे नाम निगम नौका से, भव सागर तर जाऊँ ॥
रे मन हरि का भजन कर, जब तक सुखी शरीर ।
वृद्ध भये पछतायेगा, हाड़–हाड़ में पीर ॥

अनमोल दोहे

(1) दिल के आइने में है तस्वीर यार की,
जब चाही, गरदन झुकाली देखली ॥

(3) बरबाक गुलिस्तां करने को, बस एक ही उल्लू काफी है ।
हर ठाल पर उल्लू बैठा हो, तास्तान गुलिस्तां क्या होगा ॥

(4) जो है इस संसार में, भगवाम को भूला हुआ ।
वह अगर सरदार आलम, भी हुआ तो क्या हुआ ॥

(5) लाख चौरासी भोग कर, पो पर अखी आय ।
अब की पो जो ना पड़े त, लख चौरासी जाय ॥

दूध दवा भी है

दूध प्रोटीन से भरपूर है । इस बात को आप और हम सब अच्छी तरह जानते हैं । वैसे भी दैनिक जीवन में दूध का उपयोग रोज ही करते हैं लेकिन क्या आपने सोचा भी है कि दूध एक उत्तम औषधि भी है ।

दूध से अनेक रोगों का इलाज हो सकता है, उन्हें जड़ से हटाया जा सकता है ! इसमें आप गाय, भैंस बकरी के दूध को प्रयोग में लायें, लाभ होगा।

(1) मन्द बुद्धि वाले बच्चों को गाय के दूध में दो तीन बादाम रोज घिस कर उबाल कर पिलायें। एक महिने के नियमित प्रयोग से अवश्य लाभ होगा ।

(2) कान में दर्द हो तो गाय के दूध में गन्ने का सिरका मिलाकर कान में डालें, दर्द गायब हो जायेगा ।

(3) मोटापे से बचने के लिए गाय का दूध शहद में मिलाकर पियें। इस रोग से आप हमेशा बचे रहेगें।

(4) बकरी के कच्चे दूध में मिश्री मिलाकर पीने से खूनी दस्त बन्द हो जाते हैं।

(5) पेट में गैस की शिकायत हो तो शहद और सोंठ गोदुग्ध में मिला कर लेने से छुटकारा मिल जाता हैं।

(6) भांग का नशा अधिक चढ़ जाये तो गाय के दूध में गाय का घी मिला कर पिला दें। थोड़ी देर में ही नशा उतर जायेगा।

(7) मुँह के छाले दूध में जरा सा पान वाला कत्था मिला कर घूँट भरिये तथा ऊपर मुँह उठार गरारे कीजिये। बस छाले चुटकी बजाते ही गायब हो जायेंगे।

(8) आधे शिर के दर्द में, पाव भर दूध में एक टुकड़ा सोंठ का डालकर उबालें और इसे पी कर सो जाइये। आराम होगा।

(9) हाथ-पैर या होठ फटने पर, दूध की मलाई को क्रीम की तरह लगातार लगाइये, सब ठीक हो जायेगा।

आज के युग में गाय का दूध ही सर्वोत्तम है

आज के इस प्रदूषण–युक्त युग में मानव द्वारा तैयार किये गये डीं. डी. टी. आदि कीट नाशक विष मानव के ही विनाश में लगे हैं परन्तु गाय का दूध इससे मानव की रक्षा में सक्षम है। पंजाब कृषि विश्व-विद्यालय द्वारा किये गये अनुसंधान के अनुसार गाय का दूध भैंस के दूध से अधिक लाभकारी है। एक जैसा चारा समान मात्रा में डी. डी. टी.

गायों तथा भैंसों को साथ-साथ खिलाई गई। गाय के दूध में 5% और भैंस के दूध में 12% डी. डी. टी. के अंश प्राप्त हुए।

यदि एक ही प्रकार का चारा गाय अथवा भैंस को दिया जाये तो भी गाय का दूध पीले रंग का होता है। उस पीले रंग के पदार्थ का नाम कैरोटीन है जो भैंस के दूध में नहीं होता। हरे चारे पर चरने वाली गाय का दूध अधिक पीले रंग का होता है। कैरोटीन तत्त्व की कमी से मानव के मुँह, फैफड़ों, मूत्राशय, तिल्ली में तथा अन्य प्रकार के कैंसर हो जाते हैं। कैरोटीत तत्त्व शरीर में पहुँच कर विटामिन "ए" तैयार करता है तथा रतौंधी रोग दूर करता है। बच्चों के लिए गाय का दूध अति लाभकारी है। डाक्टरों तथा आज के वैज्ञानिकों का कथन है—

गाय सुरक्षित रहेगी, विश्व में खुशहाली रहेगी।
गाय का विनाश होगा, विश्व का विनाश होगा ॥

ईश-स्तुति (सब मिलकर)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं ममदेव देव ॥
माता तुही, गुरू तात तुही, मित्र भ्रात तुही धन धान्य हमारो,
ईश तुही, जगदीश तुही, मम शीश तुही प्रभु राखन हारो।
राव तुही, उमराव तुही, सत् भाव तुही प्रभु पालन हारो,
सार तुही, करतार तुही, घरवार तुही परिवार हमारो ॥

भजन

अच्छा ही सभी कुछ होता है इन्साफ जो भी भगवान करे।
फिर उस उसका किया कब टलता है, चाहे लाख पतन इन्सान करे।
है परम कृपा उस ईश्वर की, जिसने वेदों का है ज्ञान दिया,
क्या और भी दुनियाँ में भला, जो इनता बड़ा ऐहसान करे ॥1॥
खुशियों में वक्त गुजरता है, या सख्त मुसीबत की घड़ियाँ,
ये फल है तेरे सब कर्मों के, क्यों शिकवा अरे नादान करे ॥2॥
ये सच है बुजुर्गों की बातें, जो करता है सो भरता है,
फिर उसका भला क्या होगा, जो औरों का नुकसान करे ॥3॥

दो फूल चढ़ाकर मन्दिर में, सुख चैन खजाना मांग लिया,
इससे तो पथिक वह बेहतर है, दो कोंडी का ही दान करे ॥4॥
अन्धे लंगड़ों से चल पूछो, इन अंगों की कीमत हैं क्या,
वाणि से कुछ ना बोल सके, रो रो के आँखे वियान करे ॥5॥

कहाँ गई तरुणाई ?

रे बता दे कोई ! कहाँ गई तरूणाई ?
गई गई बस गई लोट के, फिर न कभी वह आई ॥
जिसकी रक्षा के हित खाई मेवा और मिठाई।
दूध दही घृत मक्खन खाया, हलुआ खीर मलाई ॥
पिस्ता और वदाम छुहारे, ढेरों किशमिस खाई।
लड्डा पेड़ा और इमरती, बरफी बालूशाई ॥2॥
रसगुल्ले रस बड़े आदि पर, जिसकी रही चढाई।
उस बेवफा राँड ने मुड़ कर, सूरत नहीं दिखाई ॥3॥
चली गई चुपचाप तोड़कर, ममता मोह मिताई।
उसे ढूँढ़ते कमर झुक गई, फिर भी थाह न पाई ॥4॥
ऊंचे-ऊंचे पर्वत लांघें गहरी नदियाँ खाई ।
अब दश अंगुल ऊंचा नीचा, देख बुद्धि चकराई ॥5॥
कान न सुने आँख नहीं देखें, पाँव रहे लँगड़ाई।
तन में रोग समूह समायो, मन में भूल समाई ॥6॥
रे नवयुवको ! बात हमारी सुनो कान में लाई।
ये तरूणाई धोखा देगी, तजकर स्नेह सगाई ॥7॥
इसके जाने से पहिले कुछ करलो "अमर" कमाई।
जितना लाभ ले सको लेलो, फिर न उठेगी पाई ॥8॥

जीवन का महत्त्व

सूंघता कोई नहीं है, फूल मुरझाने के बाद।
कौन करता है किसी को, याद मरजाने के बाद ॥
याद कर इस जिन्दगी में, उस प्रभु को याद कर।
गीत गायेगा न कोई, तेरे सो जाने के बाद ॥1॥

लाख कोशिशों के बिना, मिलता नहीं मानव जन्म ।
खो दिया हीरा तूने, मगर पा जाने के बाद ।।2।।
कष्ट विरहों के सहे हैं, तब कहीं यह तन मिला ।
जिन्दगी में नींद सपने, खुद को सो जाने के बाद ।।3।।
याद कर इस जिन्दगी में, उस प्रभु को याद कर ।
फिर जगायेगा न कोई, तुझको सो जाने के बाद ।।4।।
जिन्दगी में ही तू यहाँ, कुचालों को दे तू छोड़ ।
छोड़ जायेंगे शव को तेरे मर जाने के बाद ।।5।।

ईश्वर दर्शन

(1)

भीतर है सखा तेरा, जरा मन लगा के देख ।
अन्तःकरण में ज्ञान की, ज्योति जला के देख ।।
है इन्द्रियों की शक्तियाँ, बाहर की ओर जो,
बाहर की ओर से इन्हें, अन्दर की ओर मोड़,
कर द्वार सकल बन्द, समाधि लगा के देख ।।
साथी पवित्र देव है, बिगड़ी बने न क्यों ?
जीवन यह तेरा भक्ति, रस में सने न क्यों ?
भाँति आदर्श भक्तों के, जीवन बना के देख ।।
मिलता है तेरा सखा, इस ही उपाय से,
मिलता नहीं कदापि वह अन्यत्र उपाय से,
ईश्वर की वाणी वेद कहे, यह अजमाके देख ।।

(2)

रखो भगवान पर श्रद्धा, वह बेड़ा पार कर देगा ।
नसीब सो रहा है जो, उसे बेदार कर देगा ।।
करो तुम कर्म अच्छे, और चलो तुम सीधे मार्ग पर ।
वो कर्मों का फैसला, उन्हीं के अनुसार कर देगा ।।
चलो मिल कर करें सब प्रार्थना दरबार में उसके ।
हमें विश्वास है पूरा, वह भक्तों का उद्धार कर देगा ।।

साधना की राह

साधना की राह पर चलना कठिन,
आयेंगे साधक तुझे लाखो विघ्न।
जिन्दगी के मोड़ पर लाखों इन्तिहाँ,
चप्पे-चप्पे पर खड़े हैं, पहरेदां,
आँख झपकी, वो लुटा जीवन का धन ॥ साधना की—
रास्ते में आग है अभिमान की,
जल गया वह जिसने ना पहिचान की।
चलने वाले देख तो, अपना चलन—साधना की—
साधना के पथिक, रास्ते में रुकना छोड़ दे
रोकें जो बन्धन, तू उनको ही तोड़ दे।
टूटे ना विश्वास, ना छुटे लगन—साधना की—
सह लेगा अगर तू अब कठिनाइयाँ,
पार कर लेगा, अगर तू खाइयाँ,
होगा तब तेरा पियारे से मिलन—साधना की—

क्षमा प्रार्थना

चरणों में आया मैं तेरे, ये विनय मेरी स्वीकर करो।
इस नाव के खेवन हारे हो, चाहे आर करो चाहे पार करो ॥
मानव चोले को धारण कर, पशुओंसे भी शर्मिन्दा हूँ,
सर भार है भारी पापो का, अब हल्का मेरा भार करो ॥
मन में कुछ और, वचन कुछ और, कर्म कुछ और, मैं करता रहा,
मेरा खाता जब तुम खोलोगे, तो दया दृष्टि सरकार करो ॥2॥
औरों पर ऊँगली एक उठी, तीन हैं मुझ पर बरस पड़ी,
औरों के ऐब तलाश करे, कुछ अपना आप सुधार करो ॥3॥
छल, कपट, पाप, अन्याय से, इस लोक में मैं धनवान बना,
परलोक सफर भारी शिर पर, कुछ तो सामान तैयार करो ॥4॥
निगम बोध पर चल देखो, लाशों के हैं अम्बर लगे,
धन के अम्बारों वालो, किस बात का अब अहंकार करो ॥5॥

भजन बना के वृद्ध हुआ, कुछ अपना आप बना न सका ।
आशानन्द थोड़े दिन बाकि, अब सच्चे प्रभु से प्यार करो ॥6॥

चलते फिरते उठते बैठते, करो ओं का जाप ।
निश्चय ही अन्तिम समय, होगा ओं मिलाप ॥

शरणागति

भले बुरे हैं बालक तेरे, शरण तेरे हम आये हैं ।
अपनी आँखों के आँसू माँ, भेट चढ़ाने आये हैं ।
बे अन्त है तेरी महिमा, अन्त तेरा कोई पाये क्या,
गायें भगवान तेरी महिमा, इस वाणी से गायें क्या ?
नेति-नेति कहते ऋषिजन, इस दुनियाँ से धाये हैं ॥1॥
पर्वत और सरोवर सागर, तेरी याद दिलाय रहे,
फूल और पत्ते मिल कर तेरा दरश दिखाय रहे ।
अमृत भर दो इस कुटिया में, आश्रमवासी आये हैं ॥2॥
जो जो कर्म किये हैं मैंने, सबका तुझको ज्ञान है,
तुम तो मेरे रोम रोम में, रमा हुआ भगवान है ।
जग से छिपा लिये हैं लेकिन तुमसे छिपे नहीं छिपाये हैं ॥3॥
जिसको मैं समझा था अपना, वो दाता सब तेरा था ।
ज्ञान हुआ सत्संग में आकर, पहिले घोर अंधेरा था ।
तू ही दे दे आज सहारा, दुनियाँ से घबराये हैं ॥4॥
जो कुछ मैं संसार से कहता, वैसा बन दिखलाऊँ मैं,
वाणी कर्म एक हो दोनों, जीवन ज्योति जगाऊँ मैं ।
आशानन्द वो पार हो गया, जिनको पार लगाये है ॥5॥

ध्यान की महिमा

तेरा ध्यान लगाया है, महान जगदीश विभु ।
हृदय मन्दिर सजाया है, महान जगदीश प्रभु ॥
ध्यान की मुद्रा मे आसन लगाया, मन विषयों से एकाग्र बनाया,
आत्मा आनन्द पाया है, महान जगदीश प्रभु—
सूरज चन्द नभ में चमकते; नदियाँ बहें और बादल गरजते,
तेरी अद्भुत माया है, महान जगदीश विभु—

श्रद्धा से पुष्पों को लेकर मैं आया, भक्ति भरी भावना को जगाया।
तुझे मन में बसाया है—महान जगदीश विभु—
कैसे कहूँ क्या अवस्था है मेरी, होश नहीं आज भौतिक तन की,
आत्मा जग मगाया है—महान जगदीश विभु—
कठिन साधना पर में हिम्मत न हारूँ, अन्तर्मुखी हो प्रभु को निहारूँ,
त्याग दी मोह माया है—महान जगदीश प्रभु—
माँगू नहीं भौतिक वस्तु, तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।
याचना गीत गाया है—महान जगदीश विभु—
ज्योति जगी आत्मा में विभु की, अनुभूति है आज पाई प्रभु की,
आज आनन्द पाया है—महान जगदीश विभु—
तेरा ध्यान लगाया है, महान जगदीश प्रभु हृदय मन्दिर—
सजाया है, महान जगदीश विभु।

और किसका सहारा पकड़ूँ

और किसका मैं पकड़ूँ सहारा स्वामी तेरे सिवा कोई नहीं है।
जिन्दगी को मैं खोता रहा हूँ, गफलत में सोता रहा हूँ।
कितनी गुजरी है दिन और रातें, नींद आँखों से धोई नहीं है ॥1॥
ठुकराया गया हूँ सारे जहाँ का' अब मै यहाँ का रहा न वहाँ का।
यह जिन्दगी है तेरे हवाले, तेरी दया का भिखारी यही है ॥2॥
तुझसा दाता नहीं जहाँ ये, मांगने को फिर जाऊँ कहाँ मैं।
जिसने पकड़ा है दामन तुम्हारा, उसकी किस्मत फिर सोई नहीं है ॥3॥

दे दो थोड़ा अनल को सहारा, इसको भी मिल जायेगा किनारा।
सौंप दी जिसने तुझको सफीना, वो तो तुमने डबोई नहीं है।

प्रभु गीत

आनन्द श्रोत बह रहा पर तू उदास है।
अचरज है जल में रहके मछली को प्यास है॥
फूलों में ज्यों सुवास है, ईख में मिठास है।
भगवान का त्यों विश्व के कण कण में वास है॥

टुक ज्ञान चक्षु खोल के तू देख तो सही।
जिसको तू ढूँढता है वह तेरे ही पास है।।
कुछ तो समय निकाल आत्मशुद्धि के लिए।
नर जन्म का उद्देश्य न केवल विलास है।।
आनन्द मोक्ष का न तू पायेगा तब तलक।
जब तलक "प्रकाश" तू इन्द्रियों का वास है।।

आनन्द ही आनन्द

प्रभु प्यारे से जिशका सम्वन्ध है, उसे हरदम आनन्द ही आनन्द है।
झूठी ममता से करके किनारा, ले के सच्चे प्रभु का सहारा।
हुआ उसकी रजा में रजामन्द हैं—उसे हरदम—
उसके कामों में फूलों सी महक है, उसकी वाणी में चिड़िया सी चहक है,
प्रेम नरमी ही जिसकी सुगन्ध है, उसे हर दम – 2
निन्दा चुगली न जिमको सुहावे, बुरी संगत की रंगत नहीं भावे,
अच्छीं संगत ही जिसको पसन्द है --उसे हरदम—3
दीन दुखियों के दुःख को मिटावे, बनके सेवक भला सवका चाहे।
नहीं जिसमें घमण्ड व पाखण्ड हैं– उसे हरदम-- 4

कीर्तन

ओउम् बोल मेरी रसना घड़ी घड़ी।
सकल काम तज ओं नाम भज मुख मण्डल में पड़ी-पड़ी।।
ओं नाम सर्वोपरि प्रभु का, यों कहे वेद की कड़ी कड़ी।।
पूरण ब्रह्म करेंगे पूरण, तेरी शुभ आशाएँ वड़ी–वड़ी।।
पल पल में ले जाना चाहती, तेरी मौत सिराहने खड़ी-खड़ी।।
राग द्वेष तज "व्यास" लगा ले, ओं नाम की झड़ी-झड़ी।।

कामना

हो असत् से दूर भगवन, सत्य का वसदान दो।
दूर कर द्रुत तिमिर भगवान, शुभ ज्योति विहान दो।
मृत्यु बन्धन से हटा, अमरत्व हे भगवान दो।
प्रकृति पाशों से छुड़ा, आनन्द मधु का पान दो।।

मोक्ष और उसकी प्राप्ति के साधन

मोक्ष किसे कहते हैं - जिसमें दुःख सदैव के लिये समाप्त हो जाते हैं, उसे मोक्ष कहते हैं। मोक्ष, मुक्ति, अपवर्ग, निःश्रेयस, निर्वाण, कैवल्य ये सब मोक्ष के ही नाम है।

मोक्ष का लक्षण— पुरुषार्थं शून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ।। पात. यो. द. 4 सूत्र 34

अर्थ—कैवल्य—मोक्ष का लक्षण यह है कि कारण के सत्व, रजस, और तमोगुण, और उसके सब कार्य पुरुषार्थ से नष्ट होकर आत्मा में विज्ञान और शुद्धि यथावत् होके स्वरूप प्रतिष्ठा=जैसा जीव का तत्त्व है, वैसा ही स्वभाविक शक्ति और गुणों से युक्त होके, शुद्ध स्वरूप परमेश्वर के स्वरूप विज्ञान प्रकाश और नित्य आनन्द में जो रहना है, उसी को कैवल्य=मोक्ष कहते हैं। मोक्ष का भागी बनने की योग्यता प्राप्त करने वाले को मोक्ष के साधनों का ज्ञान और उनका यथावत् आचरण करना उचित है। अतः आगे मोक्ष के साधनों का वर्णन किया जाता है।

मोक्ष के चार साधन—जो मनुष्य मुक्त होना चाहे, वह उन मिथ्या भाषणादि पाप कर्मों को, जिनका फल दुःख है, छोड़ दे। और सुखरूप फल देने वाले सत्य भाषणादि धर्माचरण अवश्य करे। अर्थात जो कोई दुःख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहे, वह अधर्म को छोड़कर धर्म अवश्य करे क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है।

विवेक मुक्ति का प्रथम साधन है—सत्पुरुषों के संग से पृथिवी से लेकर परमेश्वर-पर्यन्त पदार्थों के गुण, कर्म स्वभाव को जानकर उस परमेश्वर की आज्ञा पालन और उपासना में "ध्यान योग" द्वारा तत्पर होना, उससे विरुद्ध न चलना, सृष्टि से उपकार लेना "विवेक" कहलाता है। अर्थात् सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्तव्याकर्त्तव्य का निश्चय अवश्य करे, और पृथक् पृथक् जाने। विवेकी संसार में दुःख ही दुःख देखता है जैसे परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुण वृत्ति विरोधाच्च दुःखमेवसर्वं विवेकिनः।

योग. द. समाधि-15

अर्थ—1 परिणाम दुःख 2 ताप दुःख 3 संस्कार दुःख से मिश्रित और

परस्पर विरुद्ध तथा चल स्वभाव गुणों का परिणाम होने के कारण सम्पूर्ण विषय सुख विचारशील योगी को दुःख ही हैं। विवेकी कहता है—"कदली स्तम्भ निःसारे संसारे सारमार्गणम् य करोति, स संमूठों जल बुद्‌बुद संनिभे। जैसे कोई मनुष्य, इसमें कुछ सार निकलेगा, इस इच्छा से केले के वृक्ष के बक्कल उधेड़ने लगे, तो बक्कल ही बक्कल निकलते जाते हैं, उसको सार का कहीं पता नहीं चलता। वैसे ही जलफेन के समान इस नि.सार और अनित्य संसार में, जो जो सार की खोज करता है, उसको सार का लेश भीं नहीं मिलता। इस संसार का अन्वेषण करने वाला मनुष्य मूढ़ है।

संसार में यह नियम देखने में आता है कि जिस वस्तु को मनुष्य को प्राप्त करनी हो, उसके लिये चार बातें अपेक्षित हैं। (1) प्राप्त वस्तु के स्वरूप का ज्ञान (2) उसके मिलने का स्थान (3) उस वस्तु की प्राप्ति के लिये घनादि साधन (4) उसके लिये पुरुषार्थ। यदि इन चारों में एक भी न्यून है तो वस्तु की प्राप्ति नहीं हो सकती। एक दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट हो जायगी। किसी व्यक्ति को बेर प्राप्त करना है—तो उसे पहिले (1) बेरों का स्वरूप मालूम हो (2) कहाँ मिलते हैं (.) खरीदने के लिये धन (4) जहाँ बेर मिलते हैं, वहाँ तक जाने का पुरुषार्थ करना। यदि इन चारों में एक भी न्यून हो तो बेरों की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस मनुष्य को बेरों के स्वरूप का ज्ञान नहीं हैं कि वे कैसे होते हैं तो बेर के बदले में दूसरी वस्तु ले आयेगा। बेर का ज्ञान है किन्तु कहाँ मिलते हैं, यह मालूम न हो तो भी उसको बेर नहीं मिल सकते। अगर खरीदने के लिये पैसा नहीं है तब भी नहीं प्राप्त कर सकता और जाकर खरीदे नही तो भी बेर नहीं प्राप्त कर सकता है। इस दृष्टान्त को हम ईश्वर प्राप्ति के दृष्टान्त में घटाते है।

(1) जिस परमात्मा की प्राप्ति करके हम मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं, उस परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। यजुर्वेद के चालीसवाँ अध्याय के आठवें मंत्र में लिखा हैं, "स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः याथा कथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः। यजु. वे. 40।८

अर्थ - वह अक्षर अर्थात् अखण्ड अविनाशी ब्रह्म सब जगह पहुँचा हुआ है अर्थात् सर्वत्र विद्यमान है। वह तेजो रूप है। शरीर के बन्धन से रहित है। चक्षु, श्रोत, मुख, नासिका आदि छिद्रों से रहित है। वह नस नाड़ियों आदि के बन्धन से रहित है। वह अत्यन्त शुद्ध पवित्र हैं, सर्वज्ञ है, पापों से रहित है। वह परमज्ञानी और अन्तंदृष्टा है सर्व व्यापक है, स्वयं अपनी सत्ता से सदा विद्यमान है। उसने अपनी सनातन प्रजाओं के लिए पूर्ण वैज्ञानिक क्रम से अथवा पूर्व कल्प की भाँति असंख्य भोग्य पदार्थों को रचा है।

कहाँ प्राप्त होता है-- यजु. वेद के 40 अध्याय का मं 5 में लिखा हैं—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्ति के।

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।।

अर्थ—वह परमात्मा सारे संसार को गति देता और स्वयं सर्व व्यापक होने से उसके गति करने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। चक्षु, मन, बुद्धि आदि इन्द्रियों की पहुँच से बहुत दूर है, किन्तु विशुद्ध ज्ञानी आत्मा के वह निकटतम है, विशुद्ध आत्मा तो छायातप के समान उसको सदा अपने से जुड़ा हुआ अनुभव करता है। वह सूक्ष्मतम होने से सारे ब्रह्माण्ड के जड़ चेतन प्रत्येक तत्व के अन्दर ओत—प्रोत है और वह निश्चय ही ब्रह्माण्ड के बाहर भी अनन्त शून्याकाश में व्याप्त रहता है।

यहाँ यह शंका होती है कि यदि ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है तो हमारे जीवात्मा में भी है, फिर उसकी प्राप्ति कैसी ? अर्थात् नित्य प्राप्त वस्तु की प्राप्ति ही क्या ? इस शंका का समाधान यह है कि अन्तर (दूरी) तीन प्रकार की होती है। (1) देश कृत (2) कालकृत और तीसरा अज्ञानकृत। जेब में नोट हैं किन्तु ज्ञान नहीं और ढूंढने के लिये घर के भीतर बाहर ढूढ़ रहे हैं, यह अज्ञान है। ईश्वर में और मनुष्य में देश व कालकृत दूरी नहीं है। यस्तु त्रिषु कालेषु न बाधते तत्सत् । जो तीनों कालों में विद्यमान हैं, इसलिए परमात्मा का नाम सत् है। सब स्थानों और सब कालों में है। हाँ, ईश्वर और मनुष्यों में अज्ञानकृत दूरी अवश्य है। जिस समय मनुष्य

शास्त्र या गुरु से सर्वज्ञ और सर्वदा रहने वाले परमेश्वर का ज्ञान हो जाता है, तब उसी समय इधर-उधर दौड़ना छोड़कर निभ्रान्त हो जाता है।

(3) प्राप्ति के साधन — मुण्डक उ. 3।1

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचरेण नित्यम्।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।

अर्थ — मानव शरीर के भीतर स्वयं प्रकाशमान परम पवित्र वह महान चेतन देव ब्रह्म निश्चय मन-बचन-कर्म की अभिन्नता, इन्द्रिय और मन के निग्रह, यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति एव पूर्ण संयममय जीवन यापन करने से प्राप्त किया जा सकता है। अर्थात सत्य बोलना, तपमय जीवन व्यतीत करना, आत्मा और परमात्मा का सम्यक् ज्ञान और ब्रह्मचर्य के पालन द्वारा उसे प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार में मु उ. के द्वितीय खण्ड के चोथे श्लोक में कहा है—

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

अर्थ — यह प्रणव अर्थात ओं का जाप धनुष है और जीवात्मा तीर है जिसका उसमें सन्धान किया जाता है। ब्रह्म लक्ष्य है जिसको वेंधना है। पूरी सावधानी के साथ लक्ष्य का वेधन करना चाहिए और तीर की भाँति लक्ष्य में जाकर संयुक्त हो जाना चाहिए।

(4) पुरुषार्थ — प्रत्येक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ करना होता है। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये द्वन्दों को सहना अर्थात् सर्दी गर्मी, भूख प्यास, निन्दा, अपमान, लाभ-हानि आदि को सहते हुए अपने उद्देश्य की ओर आगे ही बढते रहना चाहिए। यहाँ तक मुक्ति का प्रथम साधन कहाँ। आगे दूसरा साधन कहाँ है —

मुक्ति का द्वितीय साधन-वैराग्य है-वैराग्यवान् या वीतराग होना-रागादि-दोषों को त्यागने को कहते हैं। विवेकी पुरुष ही त्यागी या वैरागी हो सकता है अर्थात भले बुरे की पहिचान या परीक्षा से निर्णय करके जो सत्य और असत्य जाना हो, उसमें से सत्याचरण का ग्रहण और असत्याचरण का त्याग करना "वैराग्य कहलाता है। अर्थात उपरोक्त दूषणों को त्याग कर राज्यशासन, प्रजापालन, गृहस्थ कर्म आदि धर्मानुकूल करता
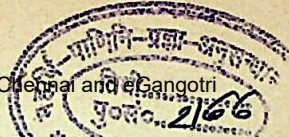
हुआ मनुष्य भी योगी और विरक्त होता है। भक्तिर्भवे मरणजन्म भयं हृदिस्थं, स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः। संसर्ग दोष रहिता विजना वनान्ता, वैराग्यमस्ति किमतः परमर्थनीयम्" भर्तृहरि शतक।

भर्तृहरि कहता है कि परमात्मा में जिसकी भक्ति हो, अन्तःकरण में जन्म मरण का भय न हो, बन्धु वर्ग में स्नेह न हो, संसर्ग दोषों से रहित होना, एकान्त स्थान में प्रेम होना और संसार से वैराग्य की भावना ये छः बातें मनुष्य में आ जावे तो फिर ईश्वर से मांगने योग्य कौनसी बात रह गई अर्थात कोई नहीं। वास्तव में जब मनुष्य संसार के विषयों और भोगों में दोष और दु;ख देखने लगता है तभी उसे उन पदार्थों से घृणा होती जाती है। "जन्म मृत्यु जरा, व्याधि दुःख दोषानु दर्शनम्" अर्थात् जब व्यक्ति सावधान होकर इन दोषों और दुःखों को देखता है, तब उसे वैराग्य की भावना पैदा होती है। योग दर्शन में, परिणाम, ताप, संस्कार दूःखै र्गुणवृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव सर्व विवेकिनः ॥ समाधि 151

अर्थ—परिणाम दुःख, ताप दुःख, संस्कार दुःख से मिश्रित और परस्पर विरुद्ध तथा चल स्वभाव गुणों का परिणाम होने के कारण सम्पूर्ण विषय सुख विचारशील योगी को दुःख ही है। इस प्रकार बार-बार विचार कर वैराग्य की भावना जागृत रखें।

(3) मुक्ति का तीसरा साधन—षट् सम्पत्ति—

मुक्ति का तीसरा साधन षट् सम्पत्ति है अर्थात् उन छः प्रकार के कर्मों का जो शमादि "षट-सम्पत्ति कहाते हैं, उनका यथावत् पालन करना। ये छः कर्म निम्न प्रकार से हैं—

(1) शम अपने आत्मा और अन्तःकरण को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण में प्रवृत्त रखना, अर्थात मन को शांत करके वश में रखना 'शम' कहलाता है।

(2) दम—इन्द्रियों को दमन करके अर्थात जीतकर अपने वश में रखना अर्थात श्रोतादि इन्द्रियों और शरीर को व्यभिचारादि बुरे कर्मों से हटाकर, शुभ कर्मों में प्रवृत्त रखना दम है।

(3) उपरति—दुष्ट कर्म करने वाले पुरुषों से सदा दूर रहकर उनकी संगति से अलग रहना। उनकी उपेक्षा करना।

(4) **तितिक्षा**—निन्दा–स्तुति, हानि–लाभ, आदि चाहे कितनी ही क्यों न हो, परन्तु हर्ष–शोक को छोड़कर, मुक्ति के साधनों में सदा लगा रहना। अर्थात स्तुति का लाभ आदि में हर्षित न होना और निंदा हानि आदि में शोकातुर न होना। आशय यह है कि द्वन्दों का सहन करना "तितिक्षा" धर्म कहलाता है।

(5) **श्रद्धा**– वेदादि सत्य शास्त्र और इसके बोध से पूर्ण आप्त विद्वान सत्योपदेष्टा महाशयों के वचनों पर विश्वास करना श्रद्धा कहाती है।

(6) **समाधान**– चित्त की एकाग्रता को "समाधान" कहते है। जब चित्त एकाग्र होता है तो जिस भी विषय पर मनुष्य मन को लगाना चाहता है, वहीं लग जाता है। चित्त की एकाग्रता से कार्य शीघ्र होते हैं और अच्छे ढंग से होते हैं।

मोक्ष प्राप्ति का चतुर्थ साधन मुमुक्षत्व है अर्थात जैसे जैसे क्षुधा तृषातुर को सिवा अन्न–जल के दूसरा कुछ भी अच्छा नही लगता, वैसे ही योगी उपासक का प्रभु दर्शन के लिये सदा लालायित रहना और मुक्ति साधनों के अतिरिक्त किसी भी मुक्ति विरोधी कर्म में प्रीति न रखना अर्थात मुक्ति की तीव्र अटूट इच्छा ही मुमुक्षत्व हैं। मुक्ति के सम्बन्ध में कठोपनिषद् में कहा है—

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्॥ कठो. 6 व 10

जब योगिक साधनाओं के कारण पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने अपने विषय से विरत हो जाती है और साथ ही मन भी सकल्प विकल्पात्मक वृत्तियों से शून्य हो जाता है और जब सत्वगुण में रंगी हुई बुद्धि ध्यान योग की साधना के कारण विपरीत दिशाओं में गति न करके स्थिरता को प्राप्त हो जाती है, तब यह जीव परमगति अर्थात मोक्ष को पा लेता हैं। इसी प्रकार से आगे कठो. में ही कहा हैं—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥ कठो. उ. 6 श्लोक 15

जिस समय मानव के हृदय में समायी हुई सारी कामनाएँ और सकल वासनायें नष्ट हो जाती हैं, उस समय यह मानव अपने अमर स्वरूप को प्राप्त हो जाता है और ध्यान योग में आसीन हो ब्रह्म की दिव्य विभूति का साक्षात् करता और साधना सिद्ध हो जाने पर उस ब्रह्म में तल्लीन हो, उसके अत्यन्त सामीप्य को उपलब्ध कर दिव्य आनन्द रस का पान करता है।

मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति, न ग्रामान्तरमेव वा।
अज्ञान हृदय ग्रन्थि नाशो, मोक्षइति स्मृतः ।। शिवगीता

मोक्ष किसी स्थान विशेष पर नहीं है। हृदय में अज्ञान का नाश हो जाना ही मोक्ष है।

भिद्यते हृदय ग्रन्थि श्छियन्ते सर्व संशया।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।। मुण्डक उ.

अर्थ—यह अक्षर ब्रह्म तो दूर से दूर और निकट से निकट है। ध्यान योग द्वारा उसका साक्षात् होने पर वासनाजन्य हृदय की गांठे टूट जाती है और अज्ञान जन्य संशय मिट जाता है तथा प्रारब्ध, सञ्चित और क्रियमाण तीनों प्रकार के कर्मों के बन्धन क्षीण हो जाते हैं।

इस प्रकार मोक्ष साधक इस पाँच भौतिक शरीर से छूटकर 17 तत्त्वों वाले लिंग शरीर से युक्त जीवात्मा परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है, उसी का नाम ब्रह्मलोक या मोक्ष की प्राप्ति है। योग भाष्य में लिखा हैं—

शय्या सनस्थोऽथ पथि व्रजन्ता, स्वस्थ परिक्षीण वितर्क जालः।
संसार वीजक्षयमीक्षमाण, स्यान्नित्य मुक्तोऽमृत भोग भागी ।।

अर्थ—सच्चा मुमुक्षु जब सोता, बैठता और मार्ग से चलता हुआ सर्वदा अनेक वितर्क जाल को नष्ट करके शान्तचित्त हो जाता है, तब उसके अन्तःकरण में निरन्तर इसी बात का निदिध्यास रहता है कि जन्म मरण रूप इस संसार के बीज का नाश कैसे हो? यही उस मुमुक्षु के मोक्ष प्राप्ति की अन्तिम सीढ़ी है। जब ऐसी दशा किसी मुमुक्षु मनुष्य की होती है, तब समझ लेना चाहिए कि वह मोक्षानन्द का भागी बनकर मुक्त हो जायगा।

(1) घर छोड़कर जंगल में जाने से मुक्ति नहीं होती। सफेद छोड़ कर भगुवा पहिनने से मुक्ति नहीं होती। यह त्याग सच्चा त्याग नहीं हैं। अहंकार का त्याग ही सच्चा त्याग है।

(2) मुक्ति आत्मा की नहीं चित्त की होती है। चित्त के मरने का नाम मुक्ति है। भोग की इच्छा का नाश किये बिना वासना का नाश नहीं होता है।

(3) जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि—ये शरीर के होते हैं आत्मा को नहीं। हम आत्मा हैं, शरीर नहीं।

(4) मैं शरीर नहीं हूँ किन्तु तीनों शरीरों का साक्षी हूँ—इस प्रकार बार बार चिन्तन करना चाहिए।

आदत पडी है विष के बिना जी नहीं सकते।
अमृत भरा है पास में, पर पी नहीं सकते॥

ईश्वर का दरबार

नभ का सदैव आसमान रहता है तना
फरश महि का हैं, बसन्त की बहार है।
सूर्य चन्द्रमा की जलती है ज्योति दोनों ओर
सुन्दर दिशाओं का हरेक खुला द्वार है।
झरने फुहारे बने, तारे बने फूल फल
पंखा मलयाचल की झलती बयार है।
न्याय करने के लिये बैठते कहां हो तुम
कितना मनोरम तुम्हारा दरबार है॥

तीव्र इच्छा का प्रभाव—एक जिज्ञासु ने किसी समुद्र तटवर्ती महात्मा के पास जाकर पूछा—महात्मा जी संसार से उद्धार होने में कितना समय लगता है। महात्मा ने उत्तर दिया कि यदि उद्धार होने की तीव्र इच्छा हो तो एक मिनिट में ही संसार से उद्धार हो सकता है। जिज्ञासु ने कहा—ऐसा ही उपाय बताइये। महात्मा बोले—स्नान करके बतलाऊँगा। चलो अभी हम समुद्र में स्नान कर आये। फिर दोनों स्नान करने समुद्र पर गये। स्नान करते समय महात्मा ने जिज्ञासु को पानी में जोर से दबा दिया और एक मिनट तक दवाये रखा। इससे वह बहुत छटपटाने लगा, तब महात्मा ने उसे बाहर निकाला।

तब जिज्ञासु ने उत्तेजित होकर कहा—आप यहाँ मुझे किसलिए लाये थे। महात्मा ने उत्तर दिया—एक मिनिट में कल्याण किस प्रकार होता है, इसे बताने के लिये। जिज्ञासु ने पूछा कि क्या समुद्र में डुबो देने से एक मिनिट में कल्याण हो सकता है? महात्मा बोले नहीं? जिज्ञासु ने कहा—फिर आपने मुझे समुद्र में दबाकर क्यों रखा। महात्मा ने कहा—तुम्हें अनुभव कराने के लिए। बताओ, जब तुमको दबा रखा था, तब तुम्हारे मन में बार बार क्या बात याद आती थी। जिज्ञासु ने कहा— कि किस प्रकार शीघ्रातिशीघ्र समुद्र से बाहर निकलूँ। मैं शक्तिभर प्रयत्न भी करता रहा, पर मैं स्वयं न निकल सका, आपने निकाला, तभी निकाला। महात्मा ने कहा—ठीक इसी प्रकार से संसार सागर से बाहर निकलने की की तीव्र इच्छा से, जब मनुष्य का जी छटपटाने लगता है तब भगवान उसका शीघ्र ही उद्धार कर देते हैं। तुम्हारी जैसी तीव्र इच्छा इस खारे समुद्र से बाहर निकलने की हुई, ऐसी ही इस दुःख के घर संसार से बाहर निकलने की तीव्र इच्छा होनी चाहिए। यही एक मिनिट में उद्धार होने का उपाय है।

ईश्वर सहायक है

इस बात का सदा स्मरण रखना चाहिए कि समस्त विघ्नों का नाश करने वाले और साधना सतत सहायता पहुँचाने वाले भगवान हमारे पीछे रहकर सदा हमारी रक्षा करते हैं। युद्ध क्षेत्र में लड़ने वाले योद्धा के मन में इस स्मृति से महान उत्साह बना रहता है कि मेरे पीछे विशाल सेना को लिए सेनापति स्थित है। भक्त को तो इससे भी अनन्त गुणा अधिक उत्साह होना चाहिए, क्योंकि उसके पीछे तो अत्यन्त शक्तिशाली परमात्मा का बल है।

शक्तिशाली सैन्य का सहारा पाकर जब निर्बल भी बलवान बन जाता है, फिर जिसके सहायक स्वयं भगवान हो, उसे तो सदैव निश्चित रहना चाहिए। भगववान स्वयं आश्वासन देते हैं—

अनन्या श्चिन्यतो माम ये जना पर्यु पासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्॥ गीता

अर्थ—ज़ो भक्त एकाग्र चित्त से मेरी उपासना करते हैं, उनका योग (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त की रक्षा) मैं स्वयं करता हूँ।

आत्म विश्वास ईश्वर का महान वरदान

पुलिस का सशस्त्र गारद साथ रहने पर सुरक्षा की निश्चिस्तता हो जाती है और निर्भय आश्वस्त रहा जा सकता है। इसी प्रकार जिसे ईश्वर पर पूर्ण विश्वास है और उसकी सर्वव्यापकता तथा सर्वशक्ति सत्ता का अनुभव करता है, उसे किसी से भी न डरना पड़ेगा। जिसे ईश्वर पर भरोसा है और जो उसे अपने भीतर हर घड़ीं विद्यमान अनुभव करता है, उसे आत्म विश्वास की कमी क्यों रहेगी।

अनेक जन्मों के महान् पुण्य कर्मों से यह मनुष्य देह प्राप्त हुआ है, इसी मानव देह में आत्म ज्ञान और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त किया जा सकता हैं। यही इस मानव जीवन की विशेषता है। भोग तो सभी योनियों में प्राप्त होते हैं और भोगे भी जाते हैं। यदि इस सुन्दर और पवित्र देह को प्राप्त करके भी मानव ने भोग ही उपार्जन किये और भोगे तब तो इस जीवन की तुलना पशु आदि के साथ की जा सकती है। यदि इस जीवन में आत्म ज्ञान और ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया तो मानों मनुष्य जीवन सफल हुआ और अनादि काल के सर्व दु:खों से छूटकर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

मनुष्य देह का प्रयोजन

वास्तव में मानव देह आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिये ही मिलता है। यह मूर्ख मनुष्य इस अमूल्य जीवन को संसार के भोगों को भोगने में ही व्यतीत कर देता है। अपने वास्तविक उद्देश्य से भटक जाता है, कर्त्तव्य से विमुख हो जाता है। संसार में जितने भी शरीर धारी प्राणी हैं, इन सब में मानव शरीर ही सर्वश्रेष्ठ है। इस शरीर में ही अपने और भगवान के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इसी कारण मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। इसकी श्रेष्ठता अपने आपको पहिचानने और जानने में हैं कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ कहाँ जाना है, क्या साथ लाया था, और क्या साथ ले जाऊंगा? पर मानव इस वास्तविक उद्देश्य को भूलकर लोक संग्रह (धन सम्पत्ति) या विषय भोगों में फँसकर जीवन व्यतीत कर देता है।

मंगल कामना

संसारेऽस्मिन् विलसतु पुनर्भव्य वेदांशु माली,
संस्काराणां भवतु महतां पावनानां प्रचारः।
लोकःस्वान्ते सकल-सुखकां स्यन्दते स्नेहधारा,

दिव्यानन्दे मनुज हृदये लीयते ब्रह्मणीदम् (दयानन्द) हे प्रभो ! मैं
चाहता हूँ कि इस संसार में फिर से आपके पवित्र वेद का प्रचार
र प्रसार हो। मानव को पवित्र बनाने वाले और निर्माण करने वाले
नह संस्कारों का घर-घर मे अनुष्ठान हो। वर्णाश्रमों की मर्यादाओं
यथावत् पालन हो। मनुष्य के हृदय में झूँठ बुद्धिहीन् मतमतान्तरों
ली हुई भेद भाव की भावना नष्ट होकर, आपस में प्रेम और सहानु-
का सागर बहाते हुए, अन्त में आपके आनन्द (मोक्ष) को प्राप्त हो
।

(2)

ओं सह नाववतु। सह नो भुनक्तु। कह वीर्यं करवाव है।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषा। व है।

ओं शान्तिः ! शान्तिः ! ! ! शान्ति ! ! !

हे हरम कृपालु प्रभो ! हम गुरु शिष्य, मालिक और नौकर, माता
पुत्र परस्पर एक दूसरे की रक्षा करने वाले हों। हम दोनों का
न-पान साथ और समान हो। हम सब एक दूसरे के बल को बढ़ाने वाले
हम दोनों का पढ़ा पढ़ाया तेज युक्त हो अर्थात् सफल हो। हम
पि परस्पर द्वेष करने वाले न हों। हम अपने जीवन में त्रिविध
न्त को प्राप्त हों।

(3)

यो जागार तमृच कामयन्ते, यो जागार तुम सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह, तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ऋ. 5।44।14

जो अर्न्त जागृति प्राप्त करके सदा सजग बना रहता है, ऋचायें भी
से प्रीत करती हैं। सजग पर ही सामोपासना का पथ खुल जाता है।

सदा जागरुक को यह परम सुन्दर ईश कहता है—मेरे सख्य को चाहने वाले, हे उपासक ! मैं तेरी हृदय गुफा में ही तो हूँ, तू वहीं देख।

अतः हम सदैव जागरुक रहकर अपनी दुर्बलताओं एवं त्रुटियों को हृदय से बाहर निकालते रहें। सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ ईश्वर को सृष्टि के कण-कण में व्यापक मानकर सदैव श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम् कार्य करते रहें।

प्रार्थना

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत।

अर्थ—सब का भला करो भगवान, सब पर कृपा करो भगवान
सबको दो भक्ति का दान, सबका सब विधि हो कल्याण ॥

सुखी बसे संसार सब, दुखिया रहे न कोय ।
यह अभिलाषा हम सबकी, भगवन पूरी होय ॥
विद्या बुद्धि तेज बल, सबके भीतर होय ।
दूध पूत धन धान्य से, वंचित रहे न कोया ॥
आपकी भक्ति प्रेम से, मन होवे भरपूर ।
राग द्वेष से चित्त मेरा, कोसों भागे दूर ॥
मिले भरोसा नाम का, हमें सदा जगदीश ।
आशा तेरे धाम की, बनी रहे मम ईश ॥
पाप से हमें बचाइये, करके दया दयाल ।
अपना भक्त बनायकर, सबको करो निहाल ॥
दिल में दया उदारता, मन में प्रेम अपार ।
हृदय में धैर्य वीरता, सब को दो करतार ॥
नारायण तुम आप हो, सकल ज्ञान भण्डार ।
दूर करो अज्ञान बस, कर दो भव से पार ॥
हाथ जोड़ विनती करूँ, सुनिये कृपा निधान ।
साधु संगत सुख दीजिए, दया नम्रता दान ॥
॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

पुस्तक प्राप्ति स्थान—आदर्श विद्या मन्दिर
हरसौली (अलवर)